लियो ह्यूबरमन

समाजवाद का ककहरा

अनुवाद : पारिजात

समाजवाद का ककहरा

लियो ह्यूबरमन

अनुवाद

पारिजात

प्रथम हिन्दी संस्करण: जनवरी, 2014
द्वितीय संस्करण : अप्रैल, 2017
प्रथम पुनर्मुद्रण : फरवरी 2024

प्रथम अंग्रेजी संस्करण
मन्थली रिव्यू प्रेस, न्यूयॉर्क, 1968

अनुवाद : पारिजात

गार्गी प्रकाशन
1/4649/45बी, गली न0 -4,
न्यू मॉडर्न शाहदरा, दिल्ली-110032
e-mail : gargiprakashan15@gmail.com
Website : www.gargibooks.com

मुद्रक:
प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स
ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया
जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-95

ISBN 81-87772-29-8

मूल्य: 70 रुपये

TRANSLATION OF *THE ABC OF SOCIALISM* by *LEO HUBERMAN*

प्रकाशकीय

समाजवाद का ककहरा के लेखक लियो ह्यूबरमन वामपंथी बुद्धिजीवियों के लिए ही नहीं, बल्कि सुधी पाठकों के लिए भी सुपरिचित नाम है। मशहूर पुस्तक *मैन्स वर्ल्डली गुड्स* का हिन्दी अनुवाद *मनुष्य की भौतिक सम्पदाएँ* गार्गी प्रकाशन से प्रकाशित हुई है और पाठकों ने इसे इसे काफी सराहा है। न्यूयॉर्क से प्रकाशित पत्रिका *मंथली रिव्यू* के संस्थापक सम्पादक के रूप में समाजवाद के प्रचार-प्रसार में उनका अनुपम योगदान रहा है।

वामपंथी प्रचार के बारे में अपने बहुमूल्य लेख में लियो ह्यूबरमन ने समाजवादी विचारों के प्रचार-प्रसार की सही शैली के बारे में जो प्रस्थापनाएँ दी हैं उनका अनुसरण करते हुए लियो ने इस पुस्तिका में बहुत ही बोधगम्य शैली अपनायी है। उनका मानना था कि "सच्चाई हमारे पक्ष में है। समाजवादी प्रचारकों का काम उस सच्चाई को सुस्पष्ट और अत्यन्त स्वीकार्य रूप में प्रस्तुत करना है।... भारी-भरकम शब्दावली और गाली-गलौज न तो किसी विषय को स्पष्ट करते हैं और न ही उसे स्वीकार्य बनाते हैं। वामपंथी जुमलेबाजी जैसे "फासीवादी नरपशु" या "साम्राज्यवाद का पालतू कुत्ता" काम के बोझ से लदे वामपंथी लेखकों के लिए आसान तरीका हो सकता है, लेकिन इसका उन लोगों के लिए कोई अर्थ नहीं जो पहले से ही मनोहर वामपंथी दायरे में शामिल न हुए हों।. .. जब तथ्य इतना चीख-चीख कर और इतने स्वीकार्य रूप से हमारी बात कह रहे हों तो भला बढ़ाचढ़ा कर या तोड़-मरोड़ कर बात कहने की जरूरत ही क्या है?" (*मंथली रिव्यू,* सितम्बर 1950)

इस पुस्तिका में समाजवाद के मूल सिद्धान्तों को अमरीकी समाज की सच्चाइयों के आधार पर बहुत ही तार्किक, सुस्पष्ट और कायल बनाने वाली शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसमें दिये गये आँकड़े 50-60 साल पुराने हैं और उदाहरण अमरीकी समाज से लिये गये हैं, लेकिन पूँजीवाद के मूल लक्षणों को समझने में इससे कोई व्यवधान नहीं आता। अमरीकी समाज पूँजीवाद-साम्राज्यवाद का प्रतिनिधि उदाहरण है, इसलिए ये उदाहरण समाजवाद के मूल सिद्धान्तों को समझने में कहीं अधिक सहायक ही हैं। अनुवाद में भी मूल रचना की सरल-सम्प्रेषणीय शैली को बनाये रखने का यथासम्भव प्रयास किया गया है।

इस पुस्तिका के बारे में पाठकों की राय, सुझाव और आलोचनाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

-गार्गी प्रकाशन

भूमिका

ज्यादातर अमरीकी नागरिक समाजवाद के बारे में सिर्फ एक ही बात जानते हैं कि वे इसे पसन्द नहीं करते। उन्हें यही विश्वास करना सिखाया गया है कि समाजवाद ऐसी कोई चीज है जिसे या तो अव्यवहारिक मानते हुए उसका मजाक उड़ाया जाय या फिर शैतान का रास्ता मानते हुए उससे खौफ खाया जाय।

यह एक चिन्ताजनक स्थिति है। एक महत्त्वपूर्ण विषय को अमरीका में व्यापक रूप से प्रचारित अत्यन्त सतही और पक्षपाती तथ्यों के आधार पर रद्द कर देना या उसकी निन्दा करना एक नासमझी है। समाजवाद एक विश्वव्यापी आन्दोलन है। इस देश में लाखों लोग यदि इससे नफरत करते हैं तो दूसरे देशों के लाखों लोग इससे खुश भी हैं। किसी भी विचार ने इतने कम समय में इतने ज्यादा लोगों की कल्पनाओं को कभी इतना अधिक प्रभावित नहीं किया।

समाजवाद लगभग 200,000,000 लोगों के लिए पहले ही एक जीवन शैली बन गया है, जो धरती के कुल क्षेत्रफल के छठवें भाग के निवासी हैं। यह बहुत तेजी से 600,000,000 और लोगों की जीवन शैली बनता जा रहा है। ये दोनों समूह मिलकर दुनिया की आबादी का लगभग एक तिहाई बनते हैं।

इसलिए यह अफसोसनाक है कि बहुत से अमरीकियों के लिए समाजवाद एक गन्दी दुनिया से ज्यादा कुछ नहीं है। यह अलग बात है कि यह अच्छा हो या बुरा, इसके खिलाफ लड़ा जाना चाहिए या इसे लाने के लिए संघर्ष करना चाहिए, लेकिन सबसे पहले इसे समझा जाना चाहिए। इस समझदारी को हासिल करने में सहायता करना ही इस पुस्तिका का उद्देश्य है।

इसके पहले आधे भाग में पूँजीवाद, उसकी संरचना और उसकी त्रुटियों की आज के अमरीका के विशेष सन्दर्भों में समाजवादी अर्थशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। दूसरे आधे भाग में समाजवाद के सिद्धान्तों की और साथ ही इसके महान विचारकों ने क्या शिक्षाएँ दी हैं, इसकी चर्चा है। बुनियादी समाजवादी सिद्धान्तों के विकास में सबसे ज्यादा और सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान करने वाला प्रभावशाली व्यक्तित्व कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स का था। समाजवाद की उनकी अवधारणा ही है जो आज तक कायम है और प्रत्येक महाद्वीप में आन्दोलन की नींव का पत्थर है। इस पुस्तिका को लिखने का आधार भी यही है।

चेतावनी का एक शब्द। जिस तस्वीर को हमने चित्रित किया है वह बिना किसी

साज-सज्जा के और बिलकुल हू-ब-हू है। कुछ पाठक इससे हतोत्साहित हो जाएँगे और कुछ क्रोधित। इसे स्वीकार करना होगा। किसी की मनोवृति और विश्वास को इस तरह सीधे-सीधे चुनौती दिये जाने पर हमेशा ही एक झटका लगता है। इसलिए समझदार पाठक इस पूरी पुस्तिका को आद्योपान्त पढ़ेंगे और इसके बाद ही समाजवादी दर्शन के बारे में कोई अन्तिम निष्कर्ष निकालेंगे।

अन्ततः इस बात पर ध्यान देना भी जरूरी है कि यह पुस्तिका समाजवाद के बारे में एक परिचय मात्र है, इसके सारांश का एक खाका भर है, इससे अधिक कुछ नहीं। इस विषय पर ढेर सारा साहित्य मौजूद है; जिन पाठकों की इस विषय में रुचि है उन्हें इस शुरुआती ककहरे तक ही नहीं रुक जाना चाहिए, बल्कि ढेर सारी रचनाओं का अध्ययन करना चाहिए जो इस विषय की जितने विस्तार से व्याख्या करने की जरूरत है, करते हैं।

भाग 1

पूँजीवाद का समाजवादी विश्लेषण

1. वर्ग संघर्ष

लोग चाहे अमीर हों या गरीब, कमजोर हों या ताकतवर, गोरे, काले, पीले हों या भूरे, वे हर जगह उन चीजों का उत्पादन और उनका वितरण करते हैं जो जिन्दगी जीने के लिए जरूरी है।

अमरीका में उत्पादन और वितरण की इस व्यवस्था को *पूँजीवाद* कहते हैं। दुनिया के कई और देशों में भी इसी तरह की व्यवस्था है। रोटी, कपड़ा, मकान, ऑटो, रेडियो, समाचार-पत्र, दवाई, स्कूल और अन्य चीजों के उत्पादन और वितरण के लिए मूलतः दो बातों का होना जरूरी है।

1. जमीन, खदान, कच्चा माल, मशीन, फैक्ट्री, जिसे अर्थशास्त्री "उत्पादन के साधन" कहते हैं।

2. श्रमजीवी- मजदूर जो अपने श्रम और हुनर को उत्पादन के साधन के साथ काम में लाते हैं और जरूरत की चीजों का उत्पादन करते हैं।

अन्य पूँजीवादी देशों के समान ही, संयुक्त राज्य अमरीका में भी उत्पादन के साधन सार्वजनिक सम्पत्ति नहीं हैं। जमीन, कच्चा माल, मशीन पर व्यक्तियों यानी पूँजीपति का मालिकाना होता है। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य है, क्योंकि उत्पादन के साधनों पर आपका स्वामित्व होना या न होना ही समाज में आपकी हैसियत को तय करता है। यदि आप उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व वाले छोटे से समूह, पूँजीपति वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं तो आप बिना काम किये भी जी सकते हैं। यदि आप उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व न रखने वाले एक बड़े समूह, यानी मेहनतकश वर्ग, मजदूर वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं तो आप बिना काम किये जिन्दा नहीं रह सकते।

एक वर्ग शासन करके जिन्दा रहता है और दूसरा वर्ग श्रम करके। पूँजीपति वर्ग की आय दूसरे लोगों को अपने लिए काम करने का अवसर देकर होती है। मेहनतकश वर्ग की आय, उसके द्वारा किये गये काम के बदले मजदूरी के रूप में होती है।

हमें जिन्दा रहने के लिए जिन जरूरी चीजों की आवश्यकता होती है उनके उत्पादन के लिए श्रम अनिवार्य है। आप यह मान सकते हैं कि जो श्रम करता है, यानी मेहनतकश वर्ग, उसको भरपूर मेहनताना मिलता है। लेकिन ऐसा है नहीं। पूँजीवादी समाज में जो सबसे ज्यादा *काम करते* हैं उनकी आय सबसे ज्यादा हो, ऐसा नहीं है। इसके बजाय जिनका सबसे ज्यादा *मालिकाना* होता है वे ही सबसे अधिक कमाते हैं।

पूँजीवादी समाज में मुनाफा ही पहिये घुमाते रहने का काम करता है। एक चालाक व्यापारी वही है जो किसी चीज को खरीदने के लिए कम से कम कीमत अदा करे और जो चीज वह बेचता है उसकी ज्यादा से ज्यादा कीमत वसूल करे। खर्चों को कम करना, ऊँचा मुनाफा कमाने के मार्ग का पहला कदम है। उत्पादन का एक खर्चा, श्रमिक की मजदूरी भी है। उसकी दिलचस्पी इसमें होती है कि अपने श्रमिक को जितना सम्भव हो सके, उतना कम भुगतान करे। इसी तरह उसकी दिलचस्पी इस बात में भी होती है कि अपने श्रमिकों से जितना सम्भव हो, उतना ज्यादा काम लिया जाय।

उत्पादन के साधनों के मालिकों और उनके लिए काम करने वाले लोगों की दिलचस्पियाँ एकदम विपरीत होती हैं। पूँजीपतियों के लिए सम्पत्ति का स्थान पहला और मानवता का स्थान दूसरा होता है। श्रमिक मानव को, यानी अपने आप को पहले स्थान पर रखते हैं और सम्पत्ति को दूसरे स्थान पर। इसी कारण से पूँजीवादी समाज में दो वर्गों के बीच हमेशा ही टकराव होता है।

वर्ग युद्ध में दोनों पक्ष जो कार्रवाई करते हैं वह उनके लिए जरूरी होती है, पूँजीपति पूँजीपति बने रहने के लिए मुनाफा कमाने की भरसक कोशिश करता है। मजदूर जिन्दा रह सके इसलिए उचित मजदूरी पाने की भरसक कोशिश करता है। दोनों एक-दूसरे की कीमत पर ही सफल हो सकते हैं।

श्रम और पूँजी के बीच सद्‌भाव की सारी बातें बकवास हैं। पूँजीवादी समाज में कोई सद्‌भावना नहीं हो सकती क्योंकि जो चीज किसी वर्ग के लिए हितकर है, वह दूसरे वर्ग के लिए हानिकारक है।

गले के साथ चाकू का जो सम्बन्ध होता है, पूँजीवादी समाज में वही सम्बन्ध उत्पादन के साधनों के मालिकों और मेहनतकशों के बीच होना *लाजिमी* है।

2. अतिरिक्त मूल्य

पूँजीवादी समाज में इनसान अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादन नहीं करता, वह दूसरों को बेचने के लिए वस्तुओं का उत्पादन करता है। पुराने समय में जहाँ लोग *अपने खुद के इस्तेमाल के लिए चीजों* का उत्पादन करते थे, आज वे *बाजार के लिए माल* उत्पादन करते हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था को माल के उत्पादन और विनिमय की चिन्ता होती है।

मजदूर उत्पादन के साधनों के मालिक नहीं होते। वे तो केवल एक ही तरीके से अपनी रोजी-रोटी कमा सकते हैं-- मजदूरी के लिए अपने आप को उनके हाथों गिरवी रख कर जो उन्हें खरीद सकते हों। वे एक माल को बाजार में बेचने जाते हैं-- अपने कार्य करने की क्षमता, अपनी श्रमशक्ति। यही चीज खरीददार उनसे खरीदता है। इसके लिए ही खरीददार उनको मजदूरी देता है। मजदूर अपने मालिक से मजदूरी पाने के लिए अपने

माल, यानी श्रमशक्ति को बेचता है।

वह कितनी मजदूरी पायेगा? क्या चीज है जो उसकी मजदूरी की दर तय करती है।

इसके जवाब की कुंजी इस तथ्य में है कि मजदूर जिस चीज को बेचता है वह माल है। किसी अन्य माल की तरह ही उसकी श्रमशक्ति का मूल्य भी उसके उत्पादन में लगे सामाजिक रूप से आवश्यक श्रमकाल की मात्रा से निर्धारित होता है। लेकिन श्रमशक्ति चूँकि खुद मजदूर का ही हिस्सा होती है, इसलिए उसकी श्रमशक्ति का मूल्य उसके जिन्दा रहने के लिए आवश्यक भोजन, वस्त्र और आवास के बराबर होता है। (और एक परिवार के गुजर-बसर के लिए भी, ताकि श्रम की आपूर्ति लगातार बनी रहे।)

दूसरे शब्दों में, यदि कोई फैक्ट्री, मिल या खदान का मालिक 40 घण्टे का श्रम कार्य चाहता है तो उस आदमी को जो यह काम करता है उसको इतना भुगतान करना जरूरी होगा कि वह जिन्दा रह सके और अपने बच्चों को बड़ा कर इस लायक बना सके कि उसके बूढ़ा होने या मरने पर वह उसकी जगह ले सके।

अपनी श्रमशक्ति के बदले में मजदूर जिन्दा रहने भर की मजदूरी पाता है, (कुछ देशों में) यह इतनी भी नहीं है कि वह एक रेडियो या बिजली का फ्रिज खरीद सके या कभी-कभार फिल्म का टिकट खरीद पाये।

जो आर्थिक नियम मेहनतकशों की मजदूरी को सिर्फ जीवन यापन भर की मजदूरी में बदलते हैं, उनका अर्थ क्या यह है कि मेहनतकशों की राजनीतिक और ट्रेड यूनियन की कार्रवाइयाँ अनुपयोगी हैं? नहीं यकीनन ऐसा नहीं हैं। कई देशों में, अपनी यूनियन के माध्यम से मजदूर जीविकोपार्जन के स्तर से ऊपर मजदूरी बढ़ा सकते हैं, जैसा कि कुछ देशों में सम्भव हुआ है जिसमें अमरीका भी शामिल है। और याद रखने वाला महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि मजदूरों के लिए यही *एकमात्र* उपाय बचा है जिससे वे उस आर्थिक नियम को हमेशा कार्यशील बनाये रख सकते हैं।

मुनाफा कहाँ से आता है?

यह माल के विनिमय की प्रक्रिया में नहीं होता, बल्कि वास्तव में हमें उत्पादन की प्रक्रिया में ही इसका उत्तर मिल पायेगा। उत्पादन से ही मुनाफा पैदा होता है जो पूँजीपति वर्ग के पास चला जाता है।

मजदूर कच्चे माल को एक तैयार माल में बदलकर उसे एक नयी सम्पदा में ढालता है जिससे एक नया मूल्य पैदा होता है। मजदूरी के रूप में मजदूर को किया गया भुगतान और मूल्य की वह मात्रा जो उस कच्चे माल में जुड़ती है, उन दोनों के बीच का अन्तर मालिक अपने पास रख लेता है।

यहीं से उसका मुनाफा आता है।

जब कोई मजदूर किसी मालिक के पास अपने आपको गिरवी रखता है तो वह जो चीज पैदा करता है उस चीज को नहीं बेचता, मजदूर उत्पादन की अपनी क्षमता बेचता है।

मालिक मजदूर को आठ घण्टे में तैयार होने वाले माल के लिए भुगतान नहीं करता, बल्कि वह उसे आठ घण्टे के श्रम के लिए भुगतान करता है।

मजदूर सम्पूर्ण कार्य दिवस के लिए अपनी श्रमशक्ति बेचता है यानी आठ घण्टे के लिए। मान लीजिए कि मजदूर की अपनी मजदूरी के मूल्य भर उत्पादन करने के लिए आवश्यक समय 4 घण्टे है। तब वह अपना काम बंद कर के घर नहीं चला जाता। बिलकुल नहीं, उसे 8 घण्टे काम करने के लिए खरीदा जा चुका है। इसीलिए वह शेष 4 घण्टे भी काम जारी रखता है। इन चार घण्टों में वह *अपने लिए नहीं,* बल्कि *अपने मालिक के लिए* काम करता है। उसके श्रम के एक भाग के लिए उसे *भुगतान किया जाता* है, दूसरे भाग के लिए *भुगतान नहीं* किया जाता। मालिक का मुनाफा इसी भुगतान न किये गये श्रम से आता है।

यहाँ मजदूर को किये गये भुगतान और उसके द्वारा उत्पादित मूल्य के बीच एक अन्तर जरूरी है। नहीं तो मालिक उसे नहीं खरीदेगा। मजदूर को मिली मजदूरी और उसके द्वारा उत्पादित माल के मूल्य के बीच के अन्तर को *अतिरिक्त मूल्य* कहते हैं।

अतिरिक्त मूल्य ही वह मुनाफा है जो मालिक के पास चला जाता है। वह श्रमशक्ति को एक दाम में खरीदता है और श्रम के उत्पाद को ऊँची कीमत पर बेचता है। इसी अन्तर, यानी अतिरिक्त मूल्य को वह अपने पास रख लेता है।

३. पूँजी संचय

पूँजीपति पैसे से शुरुआत करता है। वह उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति खरीदता है। मजदूर उत्पादन के साधनों पर अपनी श्रमशक्ति का प्रयोग करके माल पैदा करते हैं। पूँजीपति इन उत्पादों को ले लेता है और पैसों के लिए इन्हें बेचता है। इस प्रक्रिया के अन्त में वह जितना पैसा पाता है वह उसके द्वारा शुरुआत में लगायी गयी रकम से ज्यादा होता है। यह अन्तर उसका मुनाफा है।

यदि इस प्रक्रिया के अन्त में रकम की मात्रा उसके द्वारा शुरुआत में लगायी गयी रकम से कम हो तो कोई मुनाफा नहीं होता और वह उत्पादन बन्द कर देता है। पूँजीवादी उत्पादन जनता की जरूरत के हिसाब से शुरू या खत्म नहीं होता। यह तो बस पैसों से ही शुरू और खत्म होता है।

पैसा एक ही जगह स्थिर रहकर या जमा कर लेने से ज्यादा पैसा नहीं बन सकता। इसे केवल पूँजी के रूप में इस्तेमाल करके ही बढ़ाया जा सकता है, जो उत्पादन के साधन तथा श्रमशक्ति को खरीदने और मजदूरों द्वारा प्रतिवर्ष, प्रतिदिन, प्रतिघण्टा पैदा की गयी नयी सम्पदा के हिस्से से प्राप्त होती है।

यह एक चक्र-झूला है। पूँजीपति ज्यादा से ज्यादा मुनाफा तलाशता है, इसलिए कि वह ज्यादा पूँजी संचय (उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति) कर सके, इसलिए कि वह

ज्यादा से ज्यादा मुनाफा बना सके, इसलिए कि वह ज्यादा पूँजी संचय कर कर सके, इसलिए कि वह... इत्यादि, इत्यादि, इत्यादि।

मुनाफा बढ़ाने का एक ही रास्ता है कि मजदूरों से कम से कम लागत पर जल्दी से जल्दी और ज्यादा से ज्यादा चीजों का उत्पादन कराया जाय।

यह एक अच्छा विचार है, लेकिन ये होगा कैसे? मशीनें और वैज्ञानिक प्रबंधन, यही इसका उत्तर था और है भी। बड़े पैमाने पर श्रम विभाजन करके। बेहिसाब उत्पादन के जरिये। रफ्तार बढ़ाकर। प्लांट की क्षमता बढ़ाकर। ज्यादा मशीनें लगाकर। शक्ति संचालित ऐसी मशीनें लगाकर जिनके जरिये पहले जितना 5 मजदूर, जितना 10 मजदूर या 27 मजदूर या 33 मजदूर पैदा करते थे, उसे एक ही मजदूर से कराना सम्भव हो।

मशीनों द्वारा जो मजदूर "फालतू" बना दिये जाते हैं वे एक "औद्योगिक आरक्षित सेना" बन जाते हैं, जो धीरे-धीरे भूखों मर सकते हैं या इनका होना, उन लोगों की मजदूरी को बलात कम करने में मदद करता है जिनको सौभाग्यवश रोजगार मिल जाता है।

मशीनें न केवल अतिरिक्त मजदूर आबादी को ही पैदा करती है, बल्कि यह श्रम के चरित्र को भी बदल देती है। एक अकुशल, कम मजदूरी वाला मजदूर भी मशीन से वह कार्य कर सकता है जिसके लिए पहले कुशल और अधिक मजदूरी वालों की आवश्यकता होती थी। फैक्ट्रियों में बच्चे वयस्कों की जगह ले सकते हैं और औरतें पुरुषों की जगह काम कर सकती हैं।

प्रतियोगिता प्रत्येक पूँजीपति को मजबूर करती है कि वह ऐसे तरीकों की तलाश करे जिससे वह दूसरे के मुकाबले ज्यादा सस्ते सामानों का उत्पादन कर सके, उसके द्वारा "प्रति इकाई श्रम की लागत" में कमी करना इस बात को ज्यादा सम्भव बनाता है कि वह अपने प्रतिद्वन्दी से कम बिक्री करके भी मुनाफा कमाये। मशीनों के प्रयोग का बढ़ता स्तर पूँजीपति के लिए सम्भव करता है कि वह मजदूरों से कम से कम लागत में ज्यादा से ज्यादा और जल्दी से जल्दी उत्पादन करवा सके।

लेकिन जिन नयी और बेहतर मशीनों से यह सम्भव होता है उनकी लागत बहुत ज्यादा होती है। इसका अर्थ हुआ, पहले के मुकाबले ज्यादा बड़े स्तर का उत्पादन, इसका मतलब बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ हुआ ज्यादा से ज्यादा पूँजी संचय।

पूँजीपति के लिए इसका कोई विकल्प नहीं होता है। मुनाफे का बहुत बड़ा हिस्सा उसी पूँजीपति के पास जाता है जो सबसे नवीन और कार्यकुशल तकनीकी प्रणालियों का प्रयोग करता है। इसलिए प्रत्येक पूँजीपति बेहतरी (मशीन, कार्यकुशलता) के लिए प्रयासरत रहता है। लेकिन इन सुधारों के लिए ज्यादा से ज्यादा पूँजी की जरूरत होती है। व्यापार में बने रहने के लिए और दूसरों से मिलने वाली प्रतिस्पर्धा तथा अपनी स्थिति बनाये रखने के लिए पूँजीपति को निरन्तर अपनी पूँजी व्यय करते रहना जरूरी होता है।

वह सिर्फ इसलिए पूँजी संचय नहीं करता कि वह ज्यादा मुनाफा *चाहता* है और

ऐसा करके वह ज्यादा मुनाफा कमा सकता है-- वह पाता है कि व्यवस्था द्वारा ऐसा करने के लिए वह बाध्य है।

4. एकाधिकार

अमरीकी जनता के साथ अब तक जो छलावे किये जाते रहे हैं उनमें से एक है बार-बार दोहराया जाने वाला यह कथन कि हमारे देश की आर्थिक व्यवस्था ''मुक्त निजी उद्यम'' के समान है।

यह सच नहीं है। हमारी अर्थव्यवस्था का केवल एक *हिस्सा* ही प्रतियोगी, मुक्त और वैयक्तिक है। बाकी बचा हिस्सा जो कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, इसके ठीक विपरीत एकाधिकारी, नियंत्रित और समूहीकृत है।

सिद्धान्त के रूप में प्रतियोगिता एक अच्छी चीज थी। लेकिन पूँजीपतियों ने देखा कि व्यवहार इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता। उन्होंने पाया कि प्रतियोगिता मुनाफे को घटाती है जबकि संयोजन से मुनाफा बढ़ता है। उनकी रुचि मुनाफे में थी इसलिए वे क्यों प्रतियोगिता करते? उनकी नजर में संयोजन कहीं बेहतर था।

और उन्होंने तेल, चीनी, शराब, लोहा, इस्पात, कोयला और अन्य ढेर सारे जिन्सों में संयोजन किया।

''मुक्त प्रतियोगी उद्यम'' तो बहुत पहले, 1875 में ही पुराने ढर्रे से पीछा छुड़ाने की ओर बढ़ रहे थे। 1888 तक अमरीकी आर्थिक जीवन पर एकाधिकारों की ऐसी जकड़ कायम हो गयी कि राष्ट्रपति ग्रोवर क्लीवलैंड ने अमरीकी संसद को यह चेतावनी देना जरूरी समझा कि ''जब हम समग्र पूँजी की उपलब्धियों पर नजर डालते हैं तो हमें ट्रस्टों, संयोजनों और एकाधिकारों के बारे में पता चलता है, जबकि नागरिक काफी पीछे घिसटते हुए जूझ रहे हैं या उन्हें लोहे के बूटों से कुचल कर मारा जा रहा है। निगम, जिन्हें सावधानीपूर्वक कानून से नियंत्रित होना चाहिए, वे तेजी से जनता के मालिक होते जा रहे हैं।''

औद्योगिक और वित्तीय पूँजी की शादी हो जाने के चलते कुछ निगम इस सीमा तक बढ़ गये थे कि आज कुछ उद्यम या कहें कि मुट्ठीभर फर्म शब्दशः कुल उत्पादन का आधा या लगभग पूरा ही उत्पादन कर रहे हैं। निश्चित तौर पर इन उद्योगों में ''मुक्त प्रतियोगी उद्यम की पारम्परिक अमरीकी व्यवस्था'' ज्यादा लम्बे समय तक कायम नहीं रह सकती, इसके बजाय यहाँ आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण बहुत थोड़े हाथों में ही है।

यहाँ छोटे व्यवसाय से सम्बन्धित प्रतिनिधि सभा समिति की 1946 की रिपोर्ट का विशिष्ट उदाहरण मौजूद है जिसका शीर्षक था *संयुक्त राज्य अमरीका बनाम आर्थिक संकेन्द्रण और एकाधिकार*।

संयुक्त राज्य अमरीका में जनरल मोटर्स, क्रिसलर और फोर्ड मिलकर अमरीका में

बनने वाली हर 10 में से 9 कारें बनाती थी।

1934 में चार बड़ी कम्पनियाँ-- अमरीकन तम्बाकू कम्पनी, आर. जे. रेनाल्ड्स, लिग्गेट एण्ड मेयर और पी. लोटीलार्ड ''84 प्रतिशत सिगरेट, 74 प्रतिशत पीने का तम्बाकू और 70 प्रतिशत खाने-चबाने के तम्बाकू का उत्पादन करती हैं।''

चार बड़ी रबर कम्पनियाँ-- गुड इयर, फायर स्टोन, यू. एस. रबर और गुडरिच ''रबर उद्योग की कुल बिक्री के लगभग 93 प्रतिशत का उत्पादन करती थी।''

युद्ध से पहले साबुन उद्योग की तीन बड़ी कम्पनियाँ प्रोक्टर एण्ड गैम्बल, लीवर ब्रदर्स और कोलगेट-पामोलिव पीट कम्पनी 80 प्रतिशत व्यवसाय को नियंत्रित करती थी, बाकी 10 प्रतिशत तीन अन्य कम्पनियों के लिए सुरक्षित था। शेष 10 प्रतिशत लगभग 1200 साबुन उत्पादकों में बँटा हुआ था।

दो कम्पनियाँ लिब्बी-आवेंस-फोर्ड और पीटर्सबर्ग प्लेट ग्लास कम्पनी देश भर के सभी प्लेट ग्लास के 95 प्रतिशत का निर्माण करती हैं।

युनाइटेड स्टेट्स शू मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी अमरीका में पूरे जूता मशीनरी व्यवसाय के 95 प्रतिशत से भी ज्यादा को नियंत्रित करती हैं।

यह देख पाना बहुत कठिन नहीं है कि व्यापक प्रभुत्व के साथ एकाधिकारी पूँजीपति दाम तय करने कि स्थिति में हैं और वे ऐसा करते हैं। वे इसे उस बिन्दु तक तय करते हैं जहाँ वे सबसे ज्यादा मुनाफा कमा सकें। वे अपने बीच में ही ऐसी व्यवस्था निश्चित करते हैं, या सबसे शक्तिशाली कॉरपोरेशन दाम की घोषणा करता है और शेष क्षेत्र ''अगुआ के पीछे चलने'' का खेल खेलते हैं या फिर जो हमेशा ही होता है कि मुख्य पेटेंट पर अपना नियंत्रण रखते हैं और उत्पादन का लाइसेंस केवल उन्हीं को देते हैं जिन्हें लाइन में बना रहना स्वीकार हो।

एकाधिकारवादियों के लिए एकाधिकार ने यह सम्भव बनाया है कि वे कुशलतापूर्वक अपना उद्देश्य, यानी अकूत मुनाफा कमा सकें। प्रतियोगी उद्यम अच्छे समय में तो मुनाफा, लेकिन बुरे समय में घाटा दर्शाते हैं। मगर एकाधिकारी उद्यमों का तरीका इससे अलग है। वे अच्छे समय में अकूत मुनाफा कमाते हैं और बुरे समय में भी कुछ मुनाफा कमाते हैं।

एकाधिकारी शक्ति और मुनाफे के विरुद्ध जो गुस्सा 19वीं सदी की अन्तिम चौथाई में था वह 20वीं सदी में भी कायम है। हालाँकि इस ''बढ़ती बुराई'' के विषय में बहुत कुछ कहा गया था, लेकिन उसके विषय में काम बहुत कम किया गया। न तो संघीय व्यापार आयोग और न ही न्याय विभाग के ट्रस्ट विरोधी प्रभाग ने ही कुछ किया, जबकि वे चाहते थे कि कुछ करें, लेकिन इसके लिए उन्हें फण्ड या कर्मचारी नहीं दिये गये।

तथ्यतः इसके लिए कुछ किया जा सकता था। जब स्टेंडर्ड आयल कम्पनी 1911 में ''भंग'' हो गयी तो श्रीमान जे. पी. मौर्गन ने ठीक ही कहा था कि ''कोई भी कानून किसी आदमी को अपना ही प्रतिस्पर्धी नहीं बना सकता।'' 1935 के बाद की घटनाओं

ने श्रीमान मौर्गन को सही साबित किया।

अमरीका में सारे निगमों में से 0.1 प्रतिशत ही उन सभी निगमों की सारी सम्पदा के 52 प्रतिशत के मालिक हैं।

सभी निगमों में से 0.1 प्रतिशत ही उन सभी की कुल कमाई का 50 प्रतिशत कमाते हैं।

सभी विनिर्माण निगमों का 4 प्रतिशत से भी कम उन सभी के कुल मुनाफे का 84 प्रतिशत कमाता है।

''गरीब को और अधिक गरीब तथा धनी को अधिक धनी बनाने का इससे अधिक उपयुक्त तौर-तरीका शायद ही तलाशा जा सके।''

यही बात है जो एकाधिकार के बारे में टीएनईसी रिपोर्ट बताती है।

यह प्रमाण के रूप में मजदूरों, माल उत्पादकों, उपभोक्ताओं और शेयर धारकों के ऊपर एकाधिकार के प्रभाव को प्रस्तुत करती है।

''अपने उत्पादकों को बराबर मजदूरी देने में एकाधिकारवादियों की विफलता'' के कारण मेहनतकश गरीब से भी गरीब होते जा रहे हैं।

''एकाधिकारवादियों द्वारा कभी-कभी कम दाम दिये जाने'' के कारण भौतिक उत्पादक (जैसे किसान) गरीब से भी दयनीय स्थिति में हैं।

''एकाधिकारवादियों द्वारा भारी दाम वसूलने के चलते'' उपभोक्ताओं की हालत भी खराब है।

दूसरी तरफ ''एकाधिकारवादी इस प्रकार का जो गैर जरूरी मुनाफा कमाते हैं'' उसके चलते शेयर धारक अमीर होते जा रहे हैं।

जब कभी भी यह आरोप लगाया जाता है कि बहुत थोड़े से लोगों के हाथ में शक्ति और सम्पदा का भयानक संकेन्द्रण है तो बड़े व्यवसायों के पैरोकार इस बात का खंडन करते हैं कि स्थिति इतनी बुरी नहीं जितनी बतायी जाती है। वे यहाँ तक प्रतिवाद करते हैं कि जो गैर जरूरी भारी मुनाफा है उस मुनाफे को लाखों लोगों में बाँटा गया है, न कि एक छोटे से समूह में। वे प्रतिवाद करते हैं कि यहाँ शेयर मालिकाने का विस्तृत विवरण है, न कि केवल किसी श्रीमान बड़े को ही यह मुनाफा मिलता है, बल्कि टॉम, डिक और हैरी तथा लाखों अन्य छोटे शेयर धारकों के इन भीमकाय एकाधिकारी निगमों में अपने शेयर हैं। यह एक तार्किक लगने वाला प्रतिवाद है और बड़े-बड़े लोगों को मूर्ख बनाता है।

लेकिन इस तर्क में कोई सच्चाई नहीं है कि अमरीकी उद्योगों की मालिक ''जनता'' है। किसी कम्पनी में शेयरधारकों की संख्या वास्तव में बहुत ज्यादा हो सकती है, लेकिन यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण यह है कि *''कितने लोग कितने ज्यादा के मालिक''* हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि शेयर धारकों के बीच मुनाफे का बँटवारा कैसे होता है और जिस क्षण आय का यह आँकड़ा मिलता है आप पाते हैं कि अमरीकी उद्योगों में मालिकाने के

रूप में ''जनता'' का हिस्सा अति सूक्ष्म है, जबकि मुट्ठी भर बड़े लोग इसके ज्यादातर हिस्से के मालिक हैं और अकूत मुनाफे की फसल काटते हैं।

इस बात से जुड़े सबसे ज्यादा आकर्षक और आसानी से समझ में आने वाले तथ्य 1938 में राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा काँग्रेस में दिये गये थे।

1929 का साल शेयर मिल्कियत के वितरण का मुख्य वर्ष था। लेकिन इसी वर्ष व्यक्तिगत स्रोतों के अनुसार हमारी कुल आबादी के 10.33 प्रतिशत भाग ने लाभांश का 78 प्रतिशत प्राप्त किया। मोटे तौर पर यह ऐसा है कि हमारी आबादी के 100 में से एक आदमी ने कॉरपोरेट के प्रत्येक डॉलर के लाभांश का 78 प्रतिशत पाया जबकि लाभांश का शेष 22 प्रतिशत 99 लोगों में बँटा।

1941 में सीनेटर ओमहानी ने अन्तिम रिपोर्ट और अस्थाई कमिटी, जिसके वे अध्यक्ष थे, की सिफारिशों में काँग्रेस में एक सही तस्वीर प्रस्तुत की थी- ''हम जानते हैं कि हमारे देश की ज्यादातर सम्पदा और आय पर कुछ बड़े निगमों की मिल्कियत है और इन निगमों पर गिने-चुने छोटे से समूह की मिल्कियत है। इन निगमों की कर्वाइयों से होने वाला मुनाफा अन्ततः एक छोटे से समूह के पास ही चला जाता है।''

5. आय का वितरण

यह सही नहीं है कि हम अमरीकी बहुत अच्छे ढंग से जीते हैं। सच तो यह है कि हमारे कुछ ही देशवासी सौभाग्यवश आराम से जीते हैं जबकि *अधिकतर* अमरीकी दयनीय हालत में जीते हैं। सच तो यह है कि ''हमारा उच्च जीवन स्तर'' केवल एक दिखावा भर है और हमारे ज्यादातर लोगों का इससे कुछ भी लेना-देना नहीं है।

अपने दूसरे विशेष सम्बोधन में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने हमारे उच्च जीवन स्तर सम्बन्धी झूठे रहस्य को उस समय उजागर कर दिया जब उन्होंने कहा कि ''मैं देखता हूँ कि एक तिहाई राष्ट्र गन्दगी में रहता है, भुखमरी और कुपोषण का शिकार है।''

अन्य पूँजीवादी देशों की तरह अमरीका में भी पिछले कुछ वर्षों में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हुई है। ध्यान देने योग्य उपयोगी सुविधाओं की अन्तहीन शृंखला और अविश्वसनीय रूप से आश्चर्यजनक विलासिता जनता को उपलब्ध हुई है।

हालाँकि वस्तुओं की यह प्रचुर उपलब्धता जनता की जरूरत के हिसाब से नहीं बल्कि उसकी भुगतान करने की क्षमता से आँकी जाती है। राष्ट्रीय आय का बहुत कम भाग ज्यादातर अमरीकियों के पास जाता है और यह इतना नहीं होता कि वे उन चीजों को खरीद सकें जो उनकी जिन्दगी को ज्यादा अमीरी और ज्यादा सन्तुष्टि दे पाये।

सरकारी आँकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं। उदाहरण के लिए यहाँ जनगणना आयोग की *हालिया जनसंख्या रिपोर्ट* (शृंखला P-60- No- 53, 1967- P-1) से 1966 में अमरीका में परिवारों की आय के वितरण की तालिका प्रस्तुत की गयी है।

कुल परिवारिक मुद्रा आय	परिवारों की संख्या
1000 डॉलर से कम	1,149,000
1000 से 1999 डॉलर	2,635,000
2000 से 2999 डॉलर	3,197,000
3000 से 3999 डॉलर	3,341,000
4000 से 4999 डॉलर	3,474,000
5000 से 5999 डॉलर	4,108,000
6000 से 6999 डॉलर	4,574,000
7000 से 7999 डॉलर	4,542,000
8000 से 9999 डॉलर	7,408,000
10000 से 14,999 डॉलर	10,008,000
15000 और उससे से ज्यादा	4,486,000
कुल	**48,922,000**

इस पर ध्यान दें कि 10,32,000 परिवार या कहें कि कुल आबादी के 21 प्रतिशत की आय 1966 में 3,999 डॉलर सालाना से कम थी। इसका मतलब कि *अमरीका में प्रत्येक पाँच परिवारों में से एक परिवार* के लिए खाने-पीने और शादी-विवाह के लिए *प्रति सप्ताह 80 डॉलर से कम* आय थी। आप जानते हैं कि प्रति सप्ताह 80 डॉलर पर 1966 में चीजों के बढ़ते दामों को देखते हुए गुजारा करना कैसा था।

लेकिन हमें अन्दाजा लगाने कि जरूरत नहीं। तथ्य यह है कि आज के ''धनाढ्य'' अमरीका में बेहद गरीब लोग बहुत भारी संख्या में हैं। इस बात की पुष्टि 1967 के वसन्त में काँग्रेस को दिए अपने सन्देश में खुद राष्ट्रपति जॉनसन ने की थी। उन्होंने जानकारी दी कि (1) धनाढ्य अमरीका में कुल गरीब बच्चों में से 60 प्रतिशत बच्चों ने, यानी प्रत्येक 5 में से 3 बच्चों ने कभी दन्त चिकित्सक नहीं देखा, (2) धनाढ्य अमरीका में कुल गरीब और अयोग्य-अपंग बच्चों में से 60 प्रतिशत को चिकित्सीय सुविधा नहीं मिली, (3) धनाढ्य अमरीका में अपने जन्म के पहले वर्ष में ही मरने वाले गरीब बच्चों कि मृत्युदर उनसे 50 प्रतिशत अधिक है जो गरीब नहीं हैं।

कई अमरीकी सलीके से जिन्दगी जीने के लिए पर्याप्त पैसा नहीं पाते जबकि जो ऊपर के लोग हैं वे पर्याप्त से भी बहुत ज्यादा प्राप्त करते हैं। जनगणना ब्यूरो की ताजा रिपोर्ट *(हालिया जनसँख्या रिपोर्ट)* (P-7) के अनुसार 1966 में सबसे ऊँची आय श्रेणी वाले 20 प्रतिशत परिवार सारे राष्ट्रीय परिवारों की कुल आय का 40.7 प्रतिशत प्राप्त करते हैं, जबकि मध्यम श्रेणी वाले परिवार जो 60 प्रतिशत हैं, केवल 35.5 प्रतिशत प्राप्त करते हैं। ऊपर के 1/5 परिवार नीचे के 3/5 परिवार से ज्यादा आय प्राप्त करते हैं।

लेकिन क्या बहुत धनी लोग जो शीर्ष पर विराजमान हैं वे सबसे ज्यादा कर नहीं चुकाते जिससे उनका अधिकांश पैसा हाथ से निकल जाता है? वे कहते तो यही हैं लेकिन यह सच नहीं है।

द न्यूयॉर्क टाइम्स मैग्जीन में 11 अप्रैल 1965 में टेन्नेसी सीनेटर गोर के एक लेख के अनुसार ऐसा नहीं दिखाई देता। इस लेख में जिसका शीर्षक ही है "बिना कर अदा किये अमीर कैसे बनें" सीनेटर कहते हैं कि ''...अब कर सुधारों के समर्थकों द्वारा भी ऐसे उदाहरण पेश किये जाते हैं कि हमारे पास योग्यता के अनुसार कर भुगतान पर आधारित प्रगतिशील कर व्यवस्था है। जबकि सच तो यह है कि प्रतिवर्ष 10 लाख डॉलर या इससे अधिक आय वाले कर दाता हमेशा ही कुछ फैक्ट्री मजदूरों और अध्यापकों की अपेक्षा अपनी आय का बहुत कम प्रतिशत ही कर देते हैं।''

यह सच है कि अन्य देशों के ज्यादातर निवासियों की तुलना में सम्पूर्णता में हमारे लोगों का जीवन स्तर ऊँचा है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हम बहुत अच्छी स्थिति में हैं, बल्कि दूसरे हमसे भी बुरी स्थिति में हैं। ''अमरीकी उच्च जीवन स्तर'' के बारे में बात करते समय प्रचारक हमें जिस बारे में यकीन दिलाना चाहते हैं इसका वह अर्थ कतई नहीं है।

6. संकट और मन्दी

आय के वितरण (या कहें कुवितरण) सम्बन्धी तथ्य पूँजीवादी व्यवस्था और इसके आर्थिक पहलू की मुख्य कमजोरी को बताते हैं।

आम जनता की आय आम तौर पर इतनी कम होती है कि वे औद्योगिक उत्पाद का उपभोग कर ही नहीं पाती।

सम्पन्न लोगों की आय आम तौर पर ऐसे किसी बाजार में मुनाफे योग्य निवेश के लिए बहुत ज्यादा होती है जबकि बहुतों की आय दरिद्रता के चलते सीमित होती है।

बहुसंख्य आबादी जो खरीदना चाहती है उसके पास पैसा नहीं है। जिन थोड़े से लोगों के पास पैसा है उनके पास पहले से ही इतना सारा सामान है कि उनके लिए इस (मद) में और पैसा खर्च करना सम्भव ही नहीं ।

उद्योगों का विस्तार कनखजूरे कि गति से बढ़ा है और उपभोक्ताओं की क्रयशक्ति का विस्तार घोंघे की गति से हुआ है।

बड़े पैमाने के उत्पादन की समस्या का तो समाधान हो गया है, लेकिन उत्पादित वस्तुओं की बड़े पैमाने पर बिक्री की समस्या का समाधान नहीं हुआ है।

वस्तुओं के बाजार का अस्तित्व मजदूरों की जरूरत की शर्त पर टिका होता है, इसका अस्तित्व जरूरत की वस्तुओं के लिए भुगतान करने की क्षमता की शर्त पर निर्भर नहीं करता है।

इसका परिणाम होता है व्यवस्था का आवर्ती विध्वंस, काम बंदी जिसे हम संकट या मन्दी कहते हैं।

मुनाफा कमाने के लिए, पूँजीपति को अपने मजदूर को यथासम्भव कम से कम मजदूरी देना जरूरी होता है।

अपने उत्पादन को बेचने के लिए, पूँजीपति को अपने मजदूर को यथासम्भव अधिक से अधिक भुगतान करना जरूरी होता है।

वह दोनों काम एक साथ नहीं कर सकता।

कम मजदूरी ज्यादा मुनाफे को सम्भव बनाती है, लेकिन ठीक इसी समय वह मुनाफे को असम्भव बना देती है क्योंकि वह वस्तुओं की माँग कम कर देती है।

एक ऐसा अन्तरविरोध जिसे सुलझाया नहीं जा सकता।

पूँजीवादी व्यवस्था के ढाँचे में इसका कोई हल नहीं है। *मन्दी आना लाजमी है।*

1929 के संकट के बाद ऐसा लगता था कि अमरीका उस दौर को हमेशा के लिए पीछे छोड़ चुका था जब पूँजीवाद और आगे विस्तारित हो सकता था। इस तरह विस्तार करने से इसका कोई लेना-देना ही नहीं था, बल्कि उसे न्यूनतम स्तर पर सिकोड़ देने की चिन्ता थी।

लोग रोजगार चाहते थे जिसे पाने की उनकी सम्भावनाएँ बहुत ही कम थी। प्रसिद्ध अंग्रेज अर्थशास्त्री जे. एम. कीन्स के अनुसार "साक्ष्य इशारा करते हैं कि पूर्ण या लगभग पूर्ण रोजगार विरल और क्षणिक घटना है।"

हालाँकि एक रास्ता था जिससे पूँजीवादी व्यवस्था नौकरियाँ उपलब्ध करवा सकती थी। एक ही रास्ता था जिससे अति उत्पादन और कम उपभोग के पूँजीवादी लकवे से पार पाया जा सकता था। एक ही रास्ता था जिससे सर पर लटकते अधिशेष के भूत को भगाया जा सकता था। एक ही रास्ता जिससे प्रत्येक उत्पादित चीज को मुनाफे में बेचा जा सकता था।

संकट और मन्दी की भयंकर बीमारी से पूँजीवाद को बचाने का एक ही इलाज था।

युद्ध

1929 के बाद यह स्पष्ट हो गया कि केवल एक युद्ध की तैयारी और प्रबंध से ही पूँजीवादी व्यवस्था को चलाया जा सकता है जिससे मनुष्यों, सामानों, मशीनरी और पैसे को पूरी तरह काम में लगाया जा सकता है।

7. साम्राज्यवाद और युद्ध

भारी पैमाने के एकाधिकारी उद्योग अपने साथ पहले हमेशा की तुलना में उत्पादक शक्तियों में भारी विकास को साथ लाये। वस्तुओं के उत्पादन की उद्योगपतियों की शक्ति, देशवासियों की उपभोग क्षमता की तुलना में बहुत ऊँची दर से बढ़ी।

इसका अर्थ हुआ कि उन्हें द्वारा वस्तुओं को अपने देश से बाहर बेचना जारी था।

उन्हें विदेशी बाजारों की खोज *करनी थी* जो उनके अतिरिक्त निर्मित माल को खपा सकें।

उन्हें कहाँ ढूँढें?

इसका एक ही जवाब था- उपनिवेश।

अतिरिक्त निर्मित माल के लिए विदेशी बाजार की जरूरत उपनिवेशों के लिए दबाव की केवल एक वजह थी। बड़े पैमाने के व्यापक उत्पादन के लिए कच्चे माल की विशाल आपूर्ति की भी जरूरत थी। रबड़, तेल, नाइट्रेट्स, टिन, ताम्बा, निकल-- ये और ऐसे ही कई और कच्चे माल थे जो हर कहीं एकाधिकारी पूँजीपति के लिए बहुत जरूरी थे। वे इन जरूरी कच्चे मालों के स्रोतों पर मालिकाना या नियंत्रण चाहते थे। साम्राज्यवादी बनने के लिए यह दूसरा कारक था।

लेकिन इन से अलग सबसे महत्त्वपूर्ण दबाव एक अन्य अधिशेष-- पूँजी के अधिशेष कि जरूरत के लिए बाजार तलाशना था।

यह साम्राज्यवाद का मुख्य कारण था।

एकाधिकारी उद्योग अपने मालिकों के लिए बहुत ज्यादा मुनाफा लाये। असीम मुनाफा, इतना पैसा कि मालिक नहीं जानता कि इसका करना क्या है। उनकी खर्च कर सकने की क्षमता से भी ज्यादा पैसा। देश के भीतर निवेश के लिए जितना मौका था, उससे भी ज्यादा पैसा। पूँजी का लगातार अति संचय।

उद्योग और वित्त का यह गठजोड़ वस्तुओं और पूँजी के लिए बाजार में मुनाफा तलाश रहा था। यही साम्राज्यवाद का प्रेरक था। 1902 में जे. ए. हॉब्सन ने जब इस विषय पर अपना पहला खोजपरक अध्ययन प्रकाशित किया तो उनका भी यही मानना था-- "उद्योगों के बड़े नियंत्रकों का अपनी अधिशेष सम्पदा (पूँजी) के बहाव के लिए विदेशी बाजारों की तलाश और उन वस्तुओं या पूँजी को, जिसे अपने देश में न तो वे बेच ही सकते हैं और न ही प्रयोग कर सकते हैं, तेजी से विदेशों में निवेश का प्रयास ही साम्राज्यवाद है।"

उपनिवेश के लोगों के साथ समय-समय और स्थान-स्थान पर अलग-अलग व्यवहार होता था। लेकिन नृशंसता सबमें एक समान थी-- किसी भी साम्राज्यवादी राष्ट्र के हाथ बेदाग नहीं थे। इस विषय के जानेमाने विशेषज्ञ लेओनार्ड वूल्फ ने लिखा था कि "जैसे कि पिछली सदी में यूरोप के राष्ट्रीय समाज में साफ तौर पर वर्गों का निर्धारण दिखाई दिया, जैसे-- पूँजीपति और मेहनतकश, शोषक और शोषित, ठीक वैसे ही अन्तरराष्ट्रीय समाज में भी स्पष्ट रूप में वर्गों का निर्धारण दिखाई देता है। पश्चिम की साम्राज्यवादी ताकत और अफ्रीका और पूरब में शोषित जनता, एक जो शासन और शोषण कर रही थी और दूसरी जो शासित और शोषित थी।"

जो बात अन्य साम्राज्यवादी राष्ट्रों के साथ है वही अमरीका के साथ भी। सभी निजी निवेशों का लाभ उसमें शामिल वित्तीय समूहों के पास चला जाता था। लेकिन सरकारी नीतियाँ, सरकारी पैसा और सरकारी सेना इसे सुलभ बनाने और उनके निजी जोखिम की सुरक्षा में लगायी गयी थी। राष्ट्रपति टैफ्ट (विलियम हॉवर्ड टैफ्ट) ने एकाधिकारी

पूँजीपतियों की आवश्यकता और सरकार की नीतियों के बीच मौजूदा सम्बन्धों के बारे में खुलकर बताया था। "हमारी विदेशी नीति न्याय के सीधे मार्ग से चाहे बालभर भी विचलित न हो, फिर भी इसे हमारे व्यापारियों और पूँजीपतियों के लिए मुनाफे योग्य निवेश के मौके उपलब्ध कराने में सक्रिय हस्तक्षेप के काम में लगाया जा सकता है।"

20वीं सदी में हर बड़े औद्योगिक राष्ट्र में एकाधिकारवादी पूँजीवाद विकसित हुआ और इसी के साथ यह समस्या भी विकसित हुई कि अतिरिक्त पूँजी और अतिरिक्त उत्पादन का वह क्या करे। जब विभिन्न दैत्यों का, जिनका अपने राष्ट्रीय बाजारों पर नियंत्रण था, अन्तरराष्ट्रीय बाजारों में आमना-सामना हुआ तो वहाँ सबसे पहले प्रतियोगिता थी-- एक लम्बी, कठोर और तीखी प्रतियोगिता। और उसके बाद अन्तरराष्ट्रीय आधार पर समझौता, संघ और कार्टेल।

विश्व बाजार के बँटवारे की इस विराट अन्तरराष्ट्रीय संयोजन व्यवस्था से यह लगने लगा कि प्रतियोगिता को समाप्त हो जाना चाहिए और स्थायी शान्ति की शुरुआत होनी चाहिए। लेकिन ऐसा होता नहीं, क्योंकि शक्ति सम्बन्ध निरन्तर बदलते रहते हैं। कुछ कम्पनियाँ बड़ी और ज्यादा ताकतवर बनकर उभरती हैं जबकि दूसरों का पतन हो जाता है। इस तरह जो बँटवारा कभी न्यायसंगत हुआ करता था वह बाद में किसी क्षण अन्यायी हो जाता है। मजबूत समूह के बीच में असहमति है और इसी के चलते ज्यादा बड़ा हिस्सा पाने के लिए उनके बीच संघर्ष होता है। हर सरकार अपने-अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए कूद पड़ती है। इसका लाजमी नतीजा है युद्ध।

साम्राज्यवाद युद्ध की ओर ले जाता है। लेकिन युद्ध किसी भी चीज का स्थायी रूप से निबटारा नहीं करता। आपसी दुश्मनी जो आमने-सामने बैठकर बातचीत के जरिये हल नहीं हो सकती वह महज इसलिए गायब नहीं हो जाती कि अब मोलभाव बड़े धमाकों, अणु बमों, अपंग लोगों और विकृत लाशों के तर्कों के जरिये की जा रही है।

नहीं। बाजारों की खोज जारी रखना जरूरी है। एकाधिकारी पूँजीवाद के लिए अतिरिक्त उत्पाद और पूँजी के लिए अपने निकास चाहिए और नये युद्ध तब तक निरन्तर लड़े जाते रहेंगे जब तक एकाधिकारी पूँजीवाद मौजूद रहेगा।

8. राज्य

उत्पादन के साधन में निजी सम्पत्ति एक विशेष प्रकार की सम्पत्ति है। यह सम्पत्तिशाली वर्ग को गैर-सम्पत्तिशाली वर्ग के ऊपर सत्ता का अधिकार देती है। जो लोग इसके मालिक हैं, उन्हें यह न केवल इस योग्य बनाती है कि वे बिना काम किये जिन्दा रहें, बल्कि यह भी तय करती है कि स्वामित्वहीन क्या काम करेंगे और किन परिस्थितियों में करेंगे। पूँजीपति वर्ग को आदेश देने की स्थिति में और मेहनतकश वर्ग को उनकी आज्ञा का पालन करने की स्थिति में पहुँचाकर यह स्वामी और सेवक का सम्बन्ध स्थापित करती है।

तब समझा जा सकता है कि इन दोनों वर्गों के बीच एक सतत टकराव है।

मेहनतकश वर्ग का शोषण कर पूँजीपति वर्ग को उपहारस्वरूप बहुत सारी सम्पत्ति, सत्ता और सम्मान मिलता है, जबकि मेहनतकश वर्ग को असुरक्षा, दरिद्रता और दयनीय जीवन-परिस्थितियों का रोग मिलता है।

अब निश्चित रूप से कोई ऐसा तरीका होना चाहिए जिससे सम्पत्ति सम्बन्धों का यह ढाँचा कायम रहे, जो कुछ लोगों के लिए फायदेमंद और बहुत सारे लोगों के लिए नुकसानदेह हो। मेहनतकश बहुसंख्यकों के ऊपर धनी अल्पसंख्यकों की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का वर्चस्व सुरक्षित रहे, इसकी निगरानी करने के लिए कोई ऐसा शक्ति-सम्पन्न साधन होना चाहिए।

एक ऐसा साधन है। वह है राज्य।

राज्य का यही कार्य है कि वह उन सम्पत्ति सम्बन्धों के ढाँचे को सुरक्षित और संरक्षित करे जो पूँजीपति वर्ग को मेहनतकश वर्ग के ऊपर शासन करने योग्य बनाता है।

राज्य का यही कार्य है कि एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के दमन की व्यवस्था को कायम रखे।

जिनके पास उत्पादन के साधनों में निजी सम्पत्ति है और जिनके पास नहीं है, उनके बीच के संघर्ष में सम्पत्तिशाली वर्ग राज्य को सम्पत्तिहीन वर्ग के विरुद्ध एक अनिवार्य हथियार के रूप में पाते हैं।

हमें यह विश्वास दिलाया जाता है कि राज्य वर्ग से ऊपर है, कि सरकार अमीर और गरीब, ऊँचे और नीचे, सभी लोगों का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन हकीकत में, चूँकि यह पूँजीवादी व्यवस्था निजी सम्पत्ति पर आधारित है, इसलिए लाजिमी है कि निजी सम्पत्ति पर किये गये किसी भी हमले को राज्य के प्रतिरोध का सामना करना पड़ेगा और अगर जरूरत पड़ी तो इसके लिए वह किसी भी तरह की हिंसा अपना सकता है।

इस तरह जब तब वर्ग मौजूद हैं, राज्य वर्ग से ऊपर नहीं हो सकता-- इसे शासकों के पक्ष में ही होना जरूरी है। एडम स्मिथ ने बहुत पहले, 1776 में ही स्पष्ट शब्दों में बताया था कि राज्य शासक वर्ग का एक हथियार है। अपनी प्रसिद्ध किताब *द वेल्थ ऑफ नेशन्स* में स्मिथ ने लिखा है कि "नागरिक सरकार, जिसे सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए संस्थाबद्ध किया जाता है, वास्तव में गरीब के खिलाफ अमीर की सुरक्षा के लिए या जिनके पास कुछ भी नहीं है, उनसे उनकी सुरक्षा के लिए संस्थाबद्ध किया गया है जिनके पास कुछ सम्पत्ति है।"

वह वर्ग जो आर्थिक तौर पर शासन करता है, जो उत्पादन के साधनों का स्वामी होता है, वही राजनीतिक तौर पर भी शासन करता है।

यह सच है कि अमरीका जैसे लोकतंत्र में, जनता अपने उम्मीदवार को वोट देकर सदन में पहुँचाती है। उनके पास डेमोक्रेट श्रीमान क या रिपब्लिकन श्रीमान ख को चुनने

का विकल्प है। लेकिन वर्ग संघर्ष के एक खेमे में खड़े उम्मीदवार और दूसरे खेमे में खड़े उम्मीदवारों के बीच चुनाव का विकल्प कभी नहीं होता। यहाँ मुख्य पार्टियों के उम्मीदवारों के बीच निजी सम्पत्ति सम्बन्धों की व्यवस्था के प्रति रुख में कोई बुनियादी फर्क नहीं होता है। जो भी फर्क है वह मुख्य तौर पर पूरी तरह से जोर का या ब्योरे का फर्क होता है लेकिन उनके बीच मूल सिद्धान्तों का भेद कभी नहीं होता।

सार रूप में, मेहनतकशों के लिए डेमोक्रेटिक श्रीमान क और रिपब्लिकन श्रीमान ख के बीच चुनाव की आजादी का अर्थ केवल यह चुनने की आजादी है कि पूँजीपति वर्ग का कौन सा खास प्रतिनिधि काँग्रेस में पूँजीपति वर्ग के हितों में कानून बनायेगा।

जो लोग कानून बनाते हैं और जिन लोगों के हित में यह कानून बनाया जाता है उनके बीच इतना गहरा गठजोड़ है कि राज्य और शासक वर्ग के बीच सम्बन्ध को लेकर किसी को कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। हमारे एक महानतम अमरीकी के विचारों में इस पर कोई सन्देह नहीं था कि जो वर्ग आर्थिक तौर पर शासन करता है वह राजनीतिक तौर पर भी शासन करता है--

> मान लीजिए कि आप वाशिंगटन जाते हैं और अपनी सरकार से मिलने की कोशिश करते हैं। आप हमेशा ही पाएँगे कि यूँ तो आपकी बात को धैर्यपूर्वक सुना जाता है, लेकिन आपकी बात सुनने वाले आदमी उन लोगों से सलाह-मशवरा करते हैं जिनके पास बहुत अधिक दौलत है यानी बड़े बैंकर, बड़े उद्योगपति, बड़े वाणिज्यिक घरानों के मालिक, रेलमार्ग कॉरपोरेशन और जहाजरानी कॉरपोरेशन के प्रमुख... अमरीका की सरकार के प्रमुख, अमरीका के संयुक्त पूँजीपति और उद्योगपति हैं।

यह रहस्योद्घाटन करने वाला वक्तव्य 1913 में वुड्रो विल्सन की किताब में प्रकाशित हुआ था। लेखक उस स्थिति में थे कि वे क्या कह रहे हैं, यह उन्हें पता था। वे उस समय संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति थे।

सवाल उठता है कि अगर राज्य मशीनरी पूँजीपति वर्ग द्वारा नियंत्रित है और उनके हित में कार्य करती, तब यह कैसे होता है कि संवैधानिक किताबों में बनाये गये कानून पूँजीपतियों की शक्ति को नियंत्रित और सीमित करने वाले होते हैं?

ऐसे होता है, उदाहरण के लिए फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट के प्रशासन के समय। लेकिन क्यों?

राज्य सम्पत्तिहीनों के लिए और सम्पत्तिशालियों के विरोध में तभी काम करता है जब उसे ऐसा करने के लिए मजबूर किया जाता है। यह संघर्ष की किसी विशेष अवस्था में ही सम्भव होता है जब मजदूर वर्ग का दबाव इतना ज्यादा होता है कि यह समझौता *जरूरी हो* जाता है। ऐसा न करने पर कानून-व्यवस्था खतरे में पड़ सकती है या इससे भी बुरा परिणाम (शासक वर्ग के नजरिये से) क्रान्ति भी हो सकती है। लेकिन याद रखने वाली महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस दौरान जो भी सुविधाएँ हासिल होती हैं, वह निजी

सम्पत्ति की व्यवस्था के दायरे में ही होती हैं। अपने आप में पूँजीवादी व्यवस्था का ढाँचा इससे अछूता रहता है। हमेशा इस ढाँचे के भीतर ही कुछ छूट दी जाती है। शासक वर्ग का लक्ष्य आंशिक भाग का समर्पण कर सम्पूर्ण (व्यवस्था) को बचाना होता है।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट के प्रशासन के दौरान मजदूर वर्ग द्वारा हासिल की गयी सभी रियायतों (जो बहुत अधिक थीं) ने उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व की व्यवस्था को नहीं बदला। वे एक वर्ग को दूसरे वर्ग द्वारा उखाड़ फेंकने जैसा बदलाव नहीं लाये। जब श्रीमान रूजवेल्ट मरे तो मालिक अपनी निर्धारित जगहों पर थे और मजदूर अपनी।

जब राज्य ऐसा उपकरण है जिसके जरिये एक वर्ग दूसरे वर्ग के उपर अपना वर्चस्व स्थापित करता है और उसे बनाये रखता है, तब दलित बहुलांश के लिए सच्ची आजादी का यकीनन कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। कम या ज्यादा आजादी मिलना परिस्थितियों पर निर्भर करता है। लेकिन अन्तिम विश्लेषण में "आजादी" और "राज्य" शब्द एक वर्ग समाज में एक साथ मिलाये नहीं जा सकते।

राज्य उस वर्ग के निर्णयों को लागू करवाने के लिए ही होता है जिसका सरकार पर नियंत्रण होता है। पूँजीवादी समाज में राज्य पूँजीपति वर्ग के निर्णयों को लागू करवाता है जो निर्णय उस पूँजीवादी व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए तैयार किये जाते हैं, जिसमें मजदूर वर्ग को उत्पादन के साधनों के मालिकों की सेवा में श्रम करना जरूरी होता है।

भाग -2

पूँजीवाद के ऊपर समाजवादी अभियोग

9. पूँजीवाद अयोग्य और अपव्ययी है

मनुष्य की उत्पादन शक्ति में बढ़ोत्तरी के परिणामस्वरूप लोगों की जरूरतों और दरिद्रता का उन्मूलन होना चाहिए था, लेकिन इसका परिणाम ऐसा नहीं हुआ। यहाँ तक कि दुनिया के सबसे ज्यादा मजबूत, धनी और सबसे बड़े पूँजीवादी उत्पादक देश अमरीका में भी ऐसा नहीं हुआ।

प्रत्येक पूँजीवादी देश की तरह अमरीका में समृद्धि के बीचोंबीच भुखमरी है, प्रचुरता के बीचोंबीच दुर्बलता है और अमीरी के बीचोंबीच गरीबी है।

इस तरह के अन्तरविरोध वाली आर्थिक व्यवस्था में जरूर कोई मूलभूत गड़बड़ी है।

कुछ तो गड़बड़ी जरूर है। पूँजीवादी व्यवस्था अयोग्य और अपव्ययी, असंगत और अन्यायी है।

यह अयोग्य और अपव्ययी है, क्योंकि उन वर्षों में भी, जब यह अपने सर्वोत्तम रूप में कार्य कर रही है, इसके उत्पादक कल-पुरजों का 1/5 भाग उपयोग में नहीं है।

यह अयोग्य और अपव्ययी है, क्योंकि यह एक अवधि के बाद बार-बार पटरी से उतर जाती है और तब इसकी उत्पाद क्षमता का पाँचवा भाग नहीं, बल्कि आधा भाग निष्क्रिय हो जाता है। ब्रोकिंग इंस्टीट्यूट के मुताबिक "चरम उत्थान के दौर में सामान्य आँकड़ों में व्यक्त निष्क्रिय क्षमता लगभग 20 प्रतिशत थी। मन्दी के दौर में निश्चित तौर पर यह प्रतिशत बहुत ज्यादा बढ़ जाता है। हाल की (1930 की) मन्दी में यह 50 प्रतिशत तक बढ़ गया था।"

यह अयोग्य और अपव्ययी है, क्योंकि यह उन सभी लोगों को हमेशा उपयोगी काम उपलब्ध नहीं कराता जो काम करना चाहते हैं और इसी के साथ-साथ यह शारीरिक और मानसिक रूप से समर्थ हजारों लोगों को बिना काम के जिन्दा रहना मुमकिन कराता है।

यह अयोग्य और अपव्ययी है, क्योंकि यह बहुत सारे विज्ञापनकर्ताओं, विक्रेताओं, एजेंटों, प्रचारकों और उन्हीं जैसे अन्य लोगों को काम पर रखता है, जिनका काम वस्तुओं के सन्तुलित उत्पादन और वितरण में सहायक होना नहीं, बल्कि ग्राहकों को वही माल कम्पनी क के बजाय कम्पनी ख या कम्पनी ग, घ, च या छ से खरीदने के लिए उन्मादी प्रतिस्पर्धा कराना होता है।

यह अयोग्य और अपव्ययी है, क्योंकि इसके अधिकांश लोग और संसाधन

अत्यधिक उच्छृंखल विलासिता की चीजों के उत्पादन के प्रति समर्पित होते हैं और ठीक इसी समय सभी की जिन्दगी की जरूरतों के लिए पर्याप्त उत्पादन नहीं होता है।

यह अयोग्य और अपव्ययी है, क्योंकि यह मानवीय जरूरतों के स्थान पर दाम बढ़ाने और लाभ कमाने पर ध्यान केन्द्रित करती है, यह जानबूझ कर फसलों और चीजों (सामानों) के विनाश का अनुमोदन करती है।

अन्ततः यह अयोग्य और अपव्ययी है, क्योंकि यह समय-समय पर युद्ध की ओर ले जाती है- यह नृशंस पाशविक युद्ध जिन्दगी में जो कुछ अच्छा है उसको और खुद जिन्दगी को ही तबाह कर देता है।

यह अयोग्यता और अपव्यय कोई ऐसी बुराई नहीं है जिसे ठीक किया जा सकता है। यह पूँजीवादी व्यवस्था का जरूरी हिस्सा है। यह तब तक चलता रहेगा जब तक यह व्यवस्था कायम है।

अमरीका में 1930 की मन्दी के दौरान कई सालों तक काम करने योग्य कुल मजदूरों का एक चौथाई, जो काम करने का इच्छुक था और काम चाहता था, उसे रोजगार नहीं मिला। वे भूखे रहे या सरकारी भत्ते पर रहे या उन्हें किसी सरकारी योजना में छोटा-मोटा काम दे दिया गया। हर शहर में औरत, मर्द और बच्चे रोटी के लिए कतार में खड़े थे। इतनी बड़ी मात्रा में श्रमशक्ति के इस अपव्यय को कभी न भूली जा सकने वाली इस तस्वीर में देख सकते हैं कि "अगर सभी एक करोड़ दस लाख बेरोजगार स्त्री-पुरुष रोटी की कतार में अपने आगे वाले से महज एक हाथ फैलाने भर की दूरी पर खड़े हो जाते तो यह कतार न्यूयॉर्क से शिकागो तक, सेंट लुईस तक, साल्ट लेक सिटी तक और सेन फ्रांसिस्को तक भी चली जाती। यही नहीं, यह बढ़कर इतनी लम्बी हो जाती कि इस महाद्वीप को दो बार घेर सके।

ठीक इसी समय जब करोड़ों अभागे इनसानों को अपनी जिन्दगी की बहुत थोड़ी सी जरूरतें पूरी करने के लिए अपनी प्रतिभा और ऊर्जा का इस्तेमाल करने के एक मौके की दारुण आवश्यकता थी, उसी समय दूसरे खुशहाल स्त्री-पुरुष जिन्होंने कभी नहीं जाना और न जानने की इच्छा ही रही कि श्रम होता क्या है, वे उत्पादन के साधनों पर मालिकाने के चलते आरामदेह और विलासितापूर्ण जिन्दगी जी रहे थे। वे इस निर्लज्ज निकम्मेपन में जी सकते थे, क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था इसी तरह से बनी थी कि वे उन उद्योगों के शेयरों के मालिक होने के चलते जिनके बारे में उन्होंने कभी सुना भी नहीं; मुनाफा हासिल करने में सक्षम थे। बिना काम किये लाभांश प्राप्त करने वाले थोड़े से लोगों के कारण ही उन बहुत सारे लोगों की दरिद्रता, जो काम करना चाहते थे पर कर नहीं पाते थे और ज्यादा अमानवीय हो जाती थी।

प्रचुरता में दरिद्रता के विरोधाभास का सामना करते हुए पूँजीवाद इस समस्या से जूझने के लिए एक उपाय निकलता है।

यह उपाय है प्रचुरता का अन्त।

आलू के ऊपर मिट्टी का तेल उढ़ेला जाता है ताकि वह मानवीय उपभोग के योग्य न रहे, 30 प्रतिशत कहवा की फसल को बर्बाद कर दिया जाता है, दूध को नदियों में बहा दिया जाता है, फलों को जमीन पर सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है।

पूँजीवादी व्यवस्था जितनी उन्मादी दिख रही है उतनी सनक भरी नहीं है। यह एक ऐसी आर्थव्यवस्था है जिसकी चिन्ता उन लोगों को आलू, कहवा, दूध और फल खिलाने की नहीं, जिनको इसकी जरूरत है, बल्कि उसकी चिन्ता हर सम्भव तरीके से ऊँचा दाम और मुनाफा कमाने की है, चाहे इसके लिए समय-समय पर आपूर्ति को रोकना ही क्यों न पड़े। लेकिन इससे यह कार्रवाई सही नहीं हो जाती। इससे तो केवल यही सिद्ध होता है कि पूँजीवादी व्यवस्था अपनी प्रकृति में ही अयोग्य और अपव्ययी है।

पूँजीवाद का सबसे बड़ा अपव्यय है युद्ध।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में वस्तुओं के उत्पादन की जिस उच्चतम अवस्था तक पहुँचना शान्ति के समय सम्भव नहीं होता, उसे युद्धकाल में हासिल कर लिया जाता है। तब और सिर्फ तभी पूँजीवाद सभी मनुष्यों के संसाधनों, मशीनरी और पैसों को काम में लाने की समस्या को हल करता है।

किस हद तक? केवल विध्वंस। करोड़ों इनसानों की जिन्दगी, उम्मीदों और सपनों का विनाश, हजारों विद्यालयों, फैक्ट्रियों, रेलों, पुलों, बंदरगाहों, ऊर्जा केन्द्रों का विध्वंस, हजारों वर्ग मील खेतों और जंगलो का विध्वंस।

अपंगता और विकृतियाँ झेलने तथा मौत के इंतजार में जिन्दा इन लोगों की यंत्रणा के दुखों को कोई भी नहीं गिन सकता। लेकिन हम यह जान सकते हैं कि युद्ध पर कितना खर्चा आता है। हम डॉलर और सेंट में इस अपव्यय की मात्रा जानते हैं। ये आँकड़े स्पष्ट रूप से बताते हैं कि पूँजीवाद का सबसे बड़ा अपव्यय युद्ध है।

पहले विश्वयुद्ध का खर्च 20 हजार करोड़ डॉलर था। 1935 में *रिच मैन, पुअर मैन* के लेखक ने एक मापदंड पर काम कर यह मापा कि "यह पैसा अमरीका और इंग्लैण्ड और बेल्जियम और फ्रांस और ऑस्ट्रेलिया और हंगरी और जर्मनी और इटली में प्रत्येक परिवार को 3000 डॉलर का घर (डॉलर के अवमूल्यन से पहले) और जमीन का एक टुकड़ा देने के लिए पर्याप्त होता।

"या इतने सारे पैसे से हम 200 सालों तक अमरीका के सभी अस्पतालों को चला सकते थे, हम 80 सालों तक अपने सार्वजनिक विद्यालयों के सभी खर्चों को उठा सकते थे। अगर 2150 मजदूर 40 सालों तक 2500 डॉलर प्रति मजदूर प्रतिवर्ष की दिहाड़ी पर काम करते तो उनकी सारी आय मिलाकर विश्वयुद्ध के महज एक दिन की कीमत अदा हो पाती।

द्वितीय विश्वयुद्ध का खर्च इससे 5 गुना ज्यादा था।

पूँजीवाद व्यवस्था की अपव्ययता युद्ध के अलावा कहीं भी इतने बेहतर ढंग से चित्रित नहीं होती।

10. पूँजीवाद विवेकहीन है

पूँजीवादी व्यवस्था विवेकहीन है।

यह इस आधार वाक्य पर आधारित है कि व्यवसायियों के अपने स्वार्थ से निश्चिय ही राष्ट्र को लाभ होता है, कि अगर केवल कुछ लोगों को इसके लिए मुक्त कर दिया जाय कि वे जितना मुनाफा कमा सकते हैं उतना कमाएँ, तो पूरा समाज जरूर पहले से खुशहाल हो जायेगा, कि काम पूरा करने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि पूँजीपतियों को, जितना ज्यादा मुनाफा कमाना उनके लिए सम्भव है उतना कमाने दिया जाय। निश्चित तौर पर इस प्रक्रिया की गौण गति के रूप में लोगों की जरूरतें पूरी हो जाएँगी।

यह अनुमान निश्चित ही सही नहीं है और हमेशा तो बिलकुल ही नहीं। जैसे-जैसे एकाधिकार प्रतियोगिता की जगह लेता जाता है, यह बात और भी कम सच साबित होती जाती है। मुनाफा कमाने वालों के हित समाज के हितों से भिन्न भी हो सकते हैं और नहीं भी। सच्चाई यही है कि वे बार-बार टकराते हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था इसलिए विवेकहीन है, क्योंकि यह सभी कि जरूरतों के अनुरूप उत्पादन के बजाय कुछ थोड़े से लोगों के मुनाफे के लिए उत्पादन पर आधारित है।

पूँजीवादी व्यवस्था इसलिए विवेकहीन है, क्योंकि उत्पादन को प्रत्यक्ष जरूरत से जोड़ने की सामान्य-समझ का तरीका अपनाने की जगह यह उत्पादन को मुनाफे की इस धुँधली उम्मीद के साथ जोड़ने का अस्पष्ट तरीका अपनाती का उपयोग करती है कि किसी तरह जरूरतें पूरी हो जाएँगी।

यह उतनी ही असंगत और अतार्किक है जितना न्यूयॉर्क से शिकागो जाने के लिए सीधे रास्ते से जाने के बजाय न्यू ओरेलियान होते हुए घूम कर जाना।

इससे भी आगे, लोकतंत्र से जुड़ा एक स्पष्ट सवाल जो मुट्ठी भर शक्तिशाली मुनाफाखोर उद्योगपतियों द्वारा तय किया जाता है तथा उनके ही द्वारा और उनके ही हित में तय किया जाता है कि राष्ट्र की जरूरतों को पूरा किया जायेगा या नहीं और यह किसकी कीमत पर होगा। यह कहना गलत नहीं है कि जहाँ जनता अपने हितों के लिए अर्थव्यवस्था को नियंत्रित नहीं करती वहाँ आर्थिक लोकतंत्र की जगह आर्थिक तानाशाही चालाकी से काबिज हो जाती है।

शान्ति काल में यह आर्थिक तानाशाही देश के कल्याण के लिए बहुत घातक होती है और युद्धकाल में इसकी स्थिति एक खतरा बन सकती है। संकट कितना ही गहरा क्यों न हो, आर्थिक तानाशाह मुनाफे को दायित्व से पहले रखने पर जोर देते हैं और वे इस स्थिति में है कि देश को इसकी कीमत चुकाने पर मजबूर करें। ये कोई मनगढ़ंत आरोप नहीं हैं। पहले और दूसरे, दोनों ही विश्वयुद्धों में अमरीका के अनुभव इसकी पुष्टि करते हैं। 1941 में प्रकाशित टीएनईसी की रिपोर्ट इसकी कहानी बयाँ करती है--

स्पष्ट रूप से कहें तो, युद्ध या अन्य संकट की घड़ियों में व्यापार के मामलों पर सरकार और जनता आमने-सामने "बन्दूक ताने" खड़ी होती है। वह काम करने से इनकार कर देता है, यदि उसके मनमाने आदेश स्वीकार न किये जाएँ। यह प्राकृतिक सम्पदाओं, नकदी परिसम्पत्तियों, देश के आर्थिक ढाँचे की रणनीतिक स्थिति और इसके तकनीकी उपकरण व प्रक्रिया के ज्ञान को नियंत्रित करता है।

विश्व युद्ध (प्रथम) के अनुभव, जो अब साफ तौर से बार-बार पुनर्गाटित होंगे, यही दर्शाते हैं कि व्यापार इस नियंत्रण का उपयोग केवल इसकी "ठीक कीमत मिलने" पर ही करेगा। तथ्यतः यह धमकी देकर ऐंठना है जो पूरी तरह से छिपा भी नहीं होता। यह ऐसी स्थिति में है कि सवाल उठता है- आखिर इस देशभक्ति की कीमत क्या है?

इस व्यवस्था में यही विवेकहीनता तब प्रदर्शित होती है जब यह जनता की सेवा के लिए प्रकृति पर विजय पाने के रास्ते में खड़े अपने व्यापारिक हितों को और ज्यादा मुनाफा पाने के लालच को मंजूरी देता है। लगभग हर वसन्त ऋतु में ओहियो नदी अपने तटों को लाँघ कर बहती है और असंख्य लोगों की जान ले लेती है, लाखों डॉलर की सम्पत्ति का नाश करती है। फसलें तबाह होती हैं, घर ढह कर तहस-नहस हो जाते हैं और शहर जलमग्न हो जाते हैं। यह जरूरी नहीं कि ऐसा हो। इस शक्तिशाली नदी को वश में किया जा सकता है, इसकी उद्दाम ऊर्जा को काम में लाया जा सकता है, इसके मौसमी उतार-चढ़ाव को पूरे साल के लिए नियंत्रित करके जहाजरानी की सुरक्षित व्यवस्था उपलब्ध करायी जा सकती है और भू-क्षरण के चलते जहाँ मिट्टी पूरी तरह से या थोड़ी-बहुत नष्ट हो जाती है, उसे बचाया जा सकता है।

हमें इसकी तकनीक मालूम है। यह हो सकता है। टीवीए (टिन्नेसी घाटी प्राधिकरण) में यह हुआ है।

तब ऐसा क्यों नहीं किया जाता? क्षेत्रीय नियोजन में सबसे सफल अमरीकी युक्ति टीवीए को ओवीए (ओहियो घाटी प्राधिकरण) क्यों नहीं अपनाता? और क्यों एमवीए (मिसोरी घाटी प्राधिकरण) इसे नहीं अपनाता?

आखिर क्यों? क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था विवेकहीन है। इस विनाशकारी नदी को हर साल अपने क्रोधोन्माद के साथ और अपने पीछे मौत व तबाहियाँ मचाते हुए इसलिये बहने दिया जायेगा क्योंकि बाढ़ नियंत्रण, ऊर्जा विकास, नौकायन व्यवस्था और भू संरक्षण जिससे ओवीए बहुतों के हित को पूरा कर सकती है, उसे सार्वजानिक उपयोग की कम्पनियों, कोयला खदानों और रेलमार्गों के लाभ में कटौती करनी होगी। टीवीए में इन व्यापारिक हितों का टकराव ऊर्जा उत्पादन के विकास और सस्ते जल परिवहन से है तथा अन्य नदी घाटी क्षेत्रों में भी यह लड़ाई निरन्तर जारी है। पूँजीवाद की असंगतता का अन्य प्रमाण उसका यह बुनियादी आधार वाक्य है कि निजी हित और जनकल्याण निश्चित

रूप से मेल खाते हैं।

यहाँ पूँजीवादी व्यवस्था की विवेकहीनता इसकी योजना की कमी से ज्यादा स्पष्ट होती है। प्रत्येक व्यापार के भीतर एक व्यवस्था है, उसका एक संगठन और योजना है, लेकिन एक व्यापार का दूसरे व्यापार के साथ सम्बन्ध में कोई व्यवस्था, कोई संगठन और कोई योजना नहीं है-- केवल अराजकता है।

उद्योगपति हमें विश्वास दिलाते हैं कि राष्ट्र का आर्थिक कल्याण सावधानीपूर्वक एक विस्तृत योजना से नहीं बल्कि निजी पूँजीपतियों को यह निर्णय करने की छूट देकर अच्छी तरह हासिल किया जा सकता है कि खुद उनके लिए क्या सर्वोत्तम है और उनसे यह उम्मीद की जाये कि उन सभी निजी पूँजीपतियों के निर्णयों का योग समुदाय की भलाई में योगदान करेगा।

ये सब बकवास है।

पूँजीवादी व्यवस्था विवेकहीन है, साथ ही यह लोगों को परस्पर विरोधी वर्गों में बाँटती भी है। "एक अखण्ड राष्ट्र और सभी लोगों के लिए स्वतंत्रता और न्याय" की जगह पूँजीवाद अपने प्राकृतिक चरित्र के चलते ही दो खण्डित राष्ट्रों का निर्माण करता है जिनमें स्वतंत्रता और न्याय केवल एक वर्ग के लिए होते हैं। दूसरों के लिए नहीं। इसके बजाय कि एक ऐसा एकीकृत समुदाय हो, जहाँ लोग भाईचारे और मित्रता के साथ रहें, पूँजीवादी व्यवस्था मेहनतकश वर्ग और मालिक वर्ग के तौर पर ऐसे विभाजित समुदायों का निर्माण करती है जो राष्ट्रीय आय में बड़ा हिस्सा पाने के लिए आवश्यक रूप से एक-दूसरे से संघर्षरत रहते हैं।

मालिक वर्ग की आय, उसके मुनाफे को ऐसी अच्छी चीज के रूप में देखा जाता है कि उद्योगों का उद्देश्य मुनाफा कमाना ही है; मजदूर वर्ग की आय, उसकी मजदूरी को ऐसी घृणित चीज के रूप में देखा जाता है कि इससे मुनाफे में कटौती होती है। "ऊँची मजदूरी के सिद्धान्त" के फायदे पर जुबानी जमा-खर्च के बावजूद ऊपर कही बात ही पूरे मामले की जड़ है। मुनाफे को ऐसी सकारात्मक चीज समझा जाता है जिसे यथासम्भव कमाया जाय लेकिन मजदूरी को ऐसी सकारात्मक बुराई माना जाता है जिसे जितना कम रखा जाय उत्पाद की लागत उतनी ही कम होगी।

इसके परिणामस्वरूप उन्हीं चीजों को वापस खरीदने में मजदूरों की अक्षमता जिन्हें वे पैदा करते हैं, संकट और मन्दी को जन्म देती है- यह इस व्यवस्था में बार-बार आवर्ती रूप से खराबी पैदा करती है। क्या कोई आर्थिक व्यवस्था इससे ज्यादा अतार्किक हो सकती है?

इसकी एक अन्य विवेकहीनता जो इसी मुनाफाखोरी से पैदा होती है कि उद्योग के विकास का प्राथमिक उद्देश्य मुनाफा कमाना है, जिसके कारण मनुष्य जिन मूल्यों में जीते हैं, उन्ही पर संशय पैदा होता है।

पूँजीवादी व्यवस्था को चलाने वाला मार्गदर्शक नियंत्रक क्या है? यह निर्भर करता है।

व्यापार की दुनिया में जिस काम से फायदा हो वह सब जायज है-- प्रतिस्पर्द्धा, अधार्मिक स्वार्थ, धारदार मोल-तोल, दूसरों का गला काटना, अपने विरोधी को दीवार से सटा देना। दौलत बटोरने में सारी शक्ति और समय लगा देना- जितनी अधिक सम्पत्ति जमा करो, उतने ही आप सफल हैं, चाहे उसे जिस तरह भी जमा किया गया हो, बिना यह विचार किये कि उसका क्या करेंगे।

परिवार और दोस्तों की इस दुनिया में, धर्म की इस दुनिया में दूसरे मानक ही प्रभावी होते हैं। यहाँ प्रतियोगिता के बजाय आपसी सहयोग, घृणा के बजाय प्रेम, अपने लिए कब्जा करने के बजाय दूसरों की सेवा करना, अपने साथियों की पीठ पर पाँव रख खुद बुलन्दियों को छूने के बजाय अपने साथियों की मदद करना, यह सोचने के बजाय कि "मुझे इससे कितना मिलेगा?'' यह सोचना कि "क्या दूसरों को इससे लाभ होगा?", अमीर होने की लोभ-लालसा के बजाय सेवा की अभिलाषा होती है।

ये दो तरह के मूल्य उतने ही भिन्न हैं जितने दिन और रात।

11. पूँजीवाद अन्यायी है

पूँजीवादी व्यवस्था अन्यायपूर्ण है।

इसे अन्यायी होना ही चाहिए क्योंकि इसकी बुनियाद में ही असमानता है।

जिन्दगी की तमाम अच्छी चीजों का कभी न खत्म होने वाला सोता एक छोटे से विशेषाधिकारप्राप्त अमीर वर्ग की ओर बहता है। जबकि एक बहुत बड़े वर्ग, विशेषाधिकारहीन गरीब वर्ग के लिए असुरक्षा का भय, अपमानजनक दरिद्रता और अवसरों की असमानता है।

उत्पादन के साधनों के निजी मालिकाने का यह पहला परिणाम है, जो पूँजीवादी व्यवस्था की बुनियाद है। इसका दूसरा महत्त्वपूर्ण परिणाम है जो लोग उत्पादन के साधनों के मालिक हैं और जो नहीं है, उनके बीच व्यक्तिगत स्वतंत्रता में असमानता।

सिद्धान्तः मजदूर एक "स्वतंत्र" व्यक्ति है। जिस काम को करने में उसे खुशी मिले वही काम वह कर सकता है। हालाँकि तथ्यतः उसकी स्वतंत्रता सख्ती के साथ सीमित है, वह अपने मालिक द्वारा भूखों मारकर दी गयी दमनकारी परिस्थितियों को स्वीकारने मात्र के लिए आजाद है।

जैसा की राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 11 जनवरी 1944 को काँग्रेस को दिये अपने सन्देश में कहा था कि "जरूरतमंद आदमी आजाद आदमी नहीं है।"

पूँजीवादी व्यवस्था का ढाँचा ही ऐसा है कि अधिकांश आबादी हमेशा "जरूरतमंद आदमी'' ही रहती है और इसलिए कभी आजाद नहीं होती। उनके पास कुछ नहीं होता

सिवाय उनके दो हाथों के, उन्होंने कल जो कमाया था उससे आज खाना ही है, 40 साल की उम्र में उन्हें बड़े पैमाने के उत्पादन उद्योगों में काम करने के लिए "बहुत बूढ़ा" करार दिया जाता है और हमेशा उनके ऊपर अपनी नौकरी छूट जाने का डर बना रहता है।

पूँजीवादी व्यवस्था की एक और नाइंसाफी है, एक ऐसे परजीवी वर्ग को झेलना जिसे बिना काम किये जीने में शर्म नहीं आती, इसके बजाय वह इसमें गर्व महसूस करता है। पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थक तर्क देते हैं कि ये परजीवी भले ही निकम्मे हैं, लेकिन उनका पैसा नहीं- मेहनत करने वालों से जो उपहार वसूल करते हैं वह उनके द्वारा उठाये गये "जोखिम" का फल है। कुछ हद तक यकीनन यह सम्भावना सच है कि उनका पैसा खत्म हो सकता है।

लेकिन वे अपने पैसों का जोखिम उठाते हैं, जबकि मजदूर अपनी जिन्दगी का जोखिम उठाते हैं। मेहनतकश कितना बड़ा जोखिम उठाते हैं? इसके आँकड़े हतप्रभ करने वाले हैं। "युद्ध के दौरान हमारे औद्योगिक केन्द्रों में जान का जोखिम और दुर्घटनाएँ जंग के मोर्चे पर होने वाली दुर्घटनाओं से भी ज्यादा बढ़ जाती हैं।"

1946 में 24 घण्टे 7 दिन में से हर 30 मिनट में एक अमरीकी मजदूर काम के दौरान दुर्घटनावश अपनी जान गँवाता था।

हर साढ़े सत्रह सेकेंड में एक मजदूर जख्मी होता था।

उद्योगों में वास्तव में जोखिम कौन उठाता है?

और इस तरह जोखिम उठा कर किये गये काम के बदले मजदूरों को क्या ईनाम मिलता है?

पूँजीवादी उद्योग का ये एकदम खास नमूना देखिए--

1946 में बेथलेहम स्टील कम्पनी के जहाजी मजदूरों ने संघर्ष कर अपनी मजदूरी में 15 प्रतिशत का इजाफा करवाया जिससे उनका न्यूनतम वेतन 1.04 डॉलर प्रति घण्टा हो गया।

यानी एक हफ्ते में 41.60 डॉलर और साल भर में 2163.20 डॉलर।

1946 में बेथलेहम के अधिकारियों की आय में 46 प्रतिशत बढोत्तरी हुई। बेथलेहम के उपाध्यक्ष श्रीमान जे. एम. लारकिन, जिन्होंने मजदूरों को दिए जाने वाले बोनस की दर में कटौती करने की वकालत की थी, उनके बोनस में 38,764 डॉलर की बढोत्तरी हुई जो उनके वेतन 1,38,416 डॉलर के अतिरिक्त था।

यानी एक साल में 1,77,180 डॉलर और एक हफ्ते में 3407.30 डॉलर, यानी एक घण्टे में 85.15 डॉलर।

श्रीमान लारकिन बेथलेहम के मजदूरों की *साल भर* की आय से डेढ़ गुना से भी ज्यादा *हर हफ्ते* प्राप्त कर रहे थे।

श्रीमान लारकिन ने मजदूरों की *हफ्ते भर* की आमदनी से दुगनी से भी ज्यादा

आमदनी *हर घण्टे* प्राप्त की।

श्रीमान लारकिन की आय मजदूरों की तुलना में चाहे जितना ही ज्यादा है, लेकिन फिर भी यह कमाई गयी श्रेणी में आती है। उन्होंने एक जरूरी काम को अंजाम दिया और इसलिए उन्होंने जो पाया उसके लिए उनका दावा नैतिक रूप से वैध है। लेकिन उस आदमी के लिए नैतिक दावा क्या है जिसे सौभाग्य से उत्तराधिकार में मालिकाना मिलता है और जो अपनी पूरी जिन्दगी किसी काम को कभी हाथ भी नहीं लगाता?

हमें पूँजीवादी व्यवस्था में उत्तराधिकार संस्था की प्रासंगिकता को स्पष्ट करने दें। जब कोई आदमी उत्तराधिकार में दस लाख डॉलर पाता है तो ये महज पैसों का ढेर नहीं है जिसे वह तब तक चलाएगा जब तक सारा खत्म नहीं हो जाता। ऐसा तो बिलकुल भी नहीं होता।

औद्योगिक या बैंकिंग कॉरपोरेशन में शेयर और प्रतिभूति के रूप में दस लाख डॉलर सामान्य सी बात है। कुछ शेयरों से उसे 8 प्रतिशत का कुछ से 2 प्रतिशत आदि का लाभांश मिलता है। मान लें कि उसे 4 प्रतिशत के औसत से लाभांश की प्राप्ति होती है। सामान्यतः उन शेयरों के मालिक होने का मतलब हुआ कि उसे प्रतिवर्ष 40,000 डॉलर की आय होती है।

पूरे देश में साल भर में जो सम्पदा पैदा होती है उसमें से 40,000 डॉलर की सम्पदा उसकी जेब में चली जाती है। इस साल वह 40,000 डॉलर खर्च करता है और अगले साल भी और उसके अगले साल भी। बीस साल बाद वह मर जाता है और उत्तराधिकार में यह सौभाग्य उसके बेटे को मिलता है। तब बेटे के पास भी प्रतिवर्ष खर्च करने के लिए 40,000 डॉलर होते हैं; और उसके बेटे के बाद उसके बेटे के पास भी। और इसी तरह आगे भी। पीढ़ियों बाद भी प्रतिवर्ष खर्चने के लिए 40,000 डॉलर उसके पास हैं जबकि वह 10 लाख डॉलर अभी भी ज्यों का त्यों है। कौन कहेगा कि आप अपने हिस्से का केक खा भी लें और बचा भी लें, यह मुमकिन नहीं।

न तो उस आदमी ने, न उसके बेटे ने और न ही उसके बेटे के बेटे ने कभी काम करके अपने हाथ गन्दे किये। उत्पादन के साधन पर मालिकाने ने उन्हें इस लायक बनाया कि वे परजीवी की तरह दूसरों की मेहनत पर मौज उड़ा सकें।

पूँजीवादी व्यवस्था में एक और असहनीय बेइंसाफी है अवसरों की असमानता।

एक मजदूर जिसकी सालाना आय 2000 डॉलर हो, उसके घर एक बच्चा पैदा होता है और ठीक उसी समय एक लखपति के घर भी एक बच्चा पैदा होता है। क्या दोनों बराबर अधिकारों और अवसरों का उपयोग करते हैं? क्या एक का खाना, कपड़ा और घर उतना ही अच्छा है जितना दूसरे का? क्या उनके लिए चिकित्सकीय सुविधा, मनोरंजन और स्कूल समान हैं?

ऐसा कहना कतई ठीक नहीं होगा कि "अमरीका की भूमि समानता की भूमि है"

और यदि मजदूर के बेटे में भी काबीलियत होगी तो वह बुलन्दी तक पहुँच जायेगा। काबीलियत को तरहीज देना अच्छी बात है, लेकिन जन्म, सामाजिक स्थिति और सम्पदा को ज्यादा तवज्जो दी जाती है। इसका मतलब यह नहीं कि एक गरीब बच्चा जिसके पास योग्यता हो, ऊर्जा से भरपूर हो और भाग्य जिसके साथ हो, उसके लिए अमीर हो जाना असम्भव है। लेकिन *एक वर्ग* के बतौर किसी गरीब के लिए अपनी मौजूदा स्थिति से ऊपर उठने की सम्भावना हमेशा बहुत कम रही है और धीरे-धीरे और भी कम होती जा रही है।

जहाँ अवसर ही कम होते जा रहे हैं; वहाँ योग्यता होना ही पर्याप्त नहीं है। और अवसर कम होते जा रहे हैं।

कुछ साल पहले सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश जैक्सन ने अमरीकी पोलिटिकल साइंस एसोसिएशन के सदस्यों से यही बात कही थी कि "आज हमारी निजी उद्यम व्यवस्था का असली अभिशाप यही है कि इसने उद्यमिता को बर्बाद कर दिया है, यह योग्य लोगों को भी ऊपर उठने के पर्याप्त अवसर मुहैय्या नहीं कराती... योग्यता के दम पर ऊँचा उठने का ख्वाब यदा-कदा ही सच होता है... अभिभावक श्रम करते हैं और अपने बच्चों को औपचारिक शिक्षा देते हैं और जब यह शिक्षा पूरी हो जाती है तो उन लड़के-लड़कियों को विराट कॉरपोरेशनों की उस असम्भव ऊँची सीढ़ी के निचले पायदान पर लटकने के सिवाय कोई चारा नहीं दिखता जिस पर अमरीका के 60 परिवारों का वर्चस्व है।"

देश में शिक्षा की स्थिति के बारे में 1965 में राष्ट्रपति जॉनसन ने कहा था-

> कितनी सारी नौजवानियाँ बेकार जा रही हैं, कितने सारे परिवार अब निन्दनीय जीवन जी रहे हैं। इस महान शक्तिशाली राष्ट्र की कितनी सारी प्रतिभा व्यर्थ खो चुकी है, क्योंकि अमरीका हमारे सभी बच्चों को सीखने का एक मौका देने में असफल रहा है।...
>
> पिछले साल सेना की भर्ती में कुल आवेदकों में लगभग हर तीन में से एक को छाँट दिया गया था क्योंकि वे आठवीं कक्षा के स्तर की लिखाई-पढ़ाई नहीं कर सकते थे।....जैसा की मैंने आज कहा... लगभग 5 करोड़ 40 लाख लोग हाईस्कूल तक की पढ़ाई पूरी नहीं कर पाये हैं। यह मानव संसाधन की घातक बर्बादी है।

शिक्षा में अवसरों की असमानता इससे भी ज्यादा बढ़ रही है। 1947 में उच्च शिक्षा के लिए राष्ट्रपति आयोग की रिपोर्ट में कहा गया था कि "अमरीकी समाज पर यह सबसे भयंकर आरोप लगता है कि वह अपने नौजवानों को समुचित समान शिक्षा के अवसर मुहैय्या कराने में असफल रहा है। हमारे बहुसंख्य लड़के-लड़कियाँ जिस तरह की और जितनी शिक्षा पाने की उम्मीद करते हैं वह उनकी योग्यता पर नहीं बल्कि उस परिवार या समुदाय पर निर्भर करती है जिसमें वे पैदा हुए हैं या इससे भी ज्यादा हद तो यह है कि उनकी त्वचा के रंग और उनके माता-पिता के धर्म पर निर्भर करती है।"

"उनकी त्वचा का रंग" से मतलब है नीग्रो होना। काले लोगों को निम्न दर्जे की शिक्षा दी जाती है। इसे आबादी के सांख्यिकीय आँकड़े दर्शाते हैं। यहाँ दो बहुत ही प्रासंगिक रिपोर्टों का जिक्र करेंगे, 1967 में *अमरीका में नीग्रो की सामाजिक और आर्थिक दशा* शीर्षक से प्रकाशित जनगणना ब्यूरो और श्रम सांख्यिकी ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार "उच्च शिक्षा के अन्तिम वर्ष में पढ़ने वाले एक सामान्य नीग्रो नौजवान का प्रदर्शन नवीं कक्षा के स्तर का है।... 1963 में 24 से 34 वर्ष के कुल नीग्रो में से केवल 7 प्रतिशत ही उच्च शिक्षा पूर्ण कर पाये, जबकि इसी आयु वर्ग के सभी गोरों में यह 14 प्रतिशत है।"

अगर आप की चमड़ी का रंग काला है तो न केवल आपकी शिक्षा ही सबसे घटिया किस्म की होगी, बल्कि जन्म लेते समय ही मर जाने की भी सम्भावना होगी, आपकी बीमारी जानलेवा होगी, आपकी जीवन प्रत्याशा बहुत ही कम होगी, आपका घर जिसमें आप रहते हैं घटिया होगा, नौकरी पाने और उस पर बने रहने की आपकी सम्भावना बहुत कम होगी और आपकी आय बहुत कम होगी। 1966 में अश्वेत परिवारों की माध्यमिक आय औपनिवेशिक लोगों और यहाँ तक कि हमारी सीमा क्षेत्र के लोगों के श्वेत परिवारों की आय का महज 60 प्रतिशत थी।

एक ऐसे समाज में जहाँ वस्तुओं के उत्पादन का मुख्य उद्देश्य मुनाफा कमाना हो, वहाँ अपरिहार्य है कि मुनाफे को सबसे महत्त्वपूर्ण, यहाँ तक कि किसी की जिन्दगी से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण माना जायेगा। और इसलिए ऐसा ही होता भी है। पूँजीवादी समाज में यह कोई असामान्य घटना नहीं है कि डॉलर का मूल्य किसी इनसान से ज्यादा हो।

25 मार्च 1947 में केन्द्रीय खदान में हुए धमाके में मारे गये 111 लोगों की लाशें इस घिनौनी सच्चाई की चश्मदीद हैं।

इन 111 लोगों को जान देने की कोई जरूरत नहीं थी।

खदान के नियंत्रक जानते थे कि खदान असुरक्षित थी, क्योंकि राज्य और संघ, दोनों के ही खदान निरीक्षकों ने उनसे रिपोर्ट दर रिपोर्ट यह बात कही थी।

इलिनोइस राज्य के गवर्नर ड्वाइट ग्रीन जानते थे कि खदान असुरक्षित थी।

वह जानते थे क्योंकि 9 मार्च 1946 को उन्हें यूनाईटेड माईन वर्कर्स लोकल यूनियन नम्बर 52 के अधिकारियों की ओर से पत्र प्राप्त हुआ था जो खदान के लोगों के निवेदन पर लिखा गया था "...गवर्नर ग्रीन आपसे यह दरख्वास्त है कि कृपया हमारी जान बचाइये। कृपया खदान एवं खनिज विभाग से सेन्ट्रलिया कोल कॉरपोरेशन की खदान संख्या 5 में कानून को प्रभावी ढंग से लागू करवाइये।... इससे पहले कि हमारी खदान में भी उसी तरह का विस्फोटन हो जैसा हाल ही में केंटुकी और पश्चिमी वर्जीनिया में हुआ था।..."

एक साल बाद, उस पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले 4 में से 3 लोग मारे गये। उनकी मौत उस विस्फोट में हुई जिससे बचने के लिए वे गवर्नर से जान की भीख

माँग चुके थे।

धमाके के बाद राज्य की जाँच-पड़ताल समिति ने खदान के सुपरवाइजर विलियम एच ब्राउन से पूछा कि नियंत्रक ने वहाँ पानी का छिड़काव करने वाला संयंत्र क्यों नहीं लगाया।

उसने जवाब दिया कि "ईमानदारी से कहें तो हमें लगा कि ये अच्छी तकनीकें हमारी खदानों के लिए काफी खर्चीली थीं।"

समिति ने पूछा "इसका मतलब है कि आप खर्च नहीं उठाना चाहते थे?"

ब्राउन का जवाब था "हाँ, बिलकुल यही बात है।"

डॉलर और जिन्दगी की लड़ाई... और डॉलर जीत गया।

12. पूँजीवाद के समाधान की ओर

पूँजीवादी व्यवस्था न केवल अयोग्य, अपव्ययी, विवेकहीन और अन्यायी है, बल्कि यह खराब हो चुकी है।

संकट की घड़ी में व्यवस्था इस हद तक ध्वस्त हो जाती है कि खुद मेहनतकशों द्वारा समाज को भोजन, कपड़ा, मकान उपलब्ध कराने के बजाय उन बेरोजगारों के लिए अनुदान, गृह राहत, अस्थाई काम और ऐसे ही दूसरे उपायों से रोटी-कपड़ा मकान मुहैय्या कराने का बोझ समाज को उठाना पड़ता है।

अगर यह व्यवस्था सिर्फ संकट के समय में ही उत्पादन को रोकती तो यह तर्क दिया जा सकता था कि पूँजीवाद उत्पादक शक्तियों के विकास को अस्थाई रूप से बाधित करता है, न कि स्थाई रूप से। लेकिन मामला ऐसा है नहीं; हार्वर्ड ग्रेजुएट स्कूल ऑफ बिजनिस एडमिनिस्ट्रेशन के प्रोफेसर शिलक्टर का कहना है कि "हालाँकि ऐसा नहीं है कि केवल मन्दी के समय में ही उद्योग अपनी क्षमता के बराबर उत्पादित करने में असफल होते हैं, मौजूदा आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत ज्यादातर उद्यमों को अपना मुनाफा बनाये रखने के लिए आम तौर पर उत्पादन को *सामान्यतः* बाधित करना जरूरी होता है।"

बावजूद इसके कि युद्ध मानव जीवन की भारी तबाही और विशाल आर्थिक नुकसान लेकर आता है, पूँजीवादी राष्ट्र निरन्तर युद्ध की ओर कदम बढ़ाते हैं। इस तरह व्यवस्था का स्थायित्व खतरे में पड़ गया है, मानव जाति के विनाश की सम्भावना वास्तविक है, फिर भी पूँजीवाद एक युद्ध खत्म होते ही अगले युद्ध की तैयारी शुरू कर देता है।

इसके पास कोई विकल्प नहीं है। जो अन्तरविरोध इसे घेरे हुए हैं वे ही शान्तिकाल में उत्पादक क्षमता के दुरूपयोग या कम उपयोग का कारण हैं। केवल युद्ध या युद्ध की तैयारी में ही यह प्रचुर उत्पादन कर सकती है। *यह खुद अपनी ही मौत के हथियारों को तैयार करने के अलावा जिन्दा नहीं रह सकती।*

पूँजीवाद बदलाव के लिए परिपक्व है।

नयी व्यवस्था किसी के "हुक्म से" नहीं बन सकती है। यह पुरानी व्यवस्था से निकलेगी, ठीक वैसे ही जैसे पूँजीवाद सामन्तवाद से निकला था। पूँजीवादी समाज के अपने विकास के भीतर हमें नयी सामाजिक व्यवस्था के अंकुरों को तलाश करना चाहिए।

यह देखने के लिए हमें बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं है। पूँजीवाद व्यक्तिगत उत्पादन की प्रक्रिया से सामूहिक उत्पादन प्रक्रिया में रूपान्तरित हो चुका है। पुराने दिनों में कोई व्यक्तिगत दस्तकार अपने निजी उपकरणों से, अपनी दुकान पर चीजें तैयार करता था, जबकि आज हजारों मजदूर एक साथ, एक बड़ी फैक्ट्री में जटिल मशीनों के द्वारा माल तैयार करते हैं।

विकसित होकर यह प्रक्रिया जैसे-जैसे ज्यादा से ज्यादा सामाजिक होती जाती है, वैसे-वैसे बड़ी से बड़ी फैक्ट्रियों में ज्यादा से ज्यादा लोग एक साथ जुटते जाते हैं।

पूँजीवादी समाज में वस्तुओं का संचालन और निर्माण सहकारी तरीकों से होता है, लेकिन जो लोग इनका निर्माण करते हैं वे सहकारी रूप से इसके मालिक नहीं होते। जो लोग मशीनरी का उपयोग करते हैं वे उसके मालिक नहीं होते और जो इसके मालिक होते हैं वे उसका उपयोग नहीं करते।

पूँजीवादी समाज का बुनियादी अन्तरविरोध यह है कि उत्पादन तो सामाजिक है, सामूहिक प्रयासों और सामूहिक श्रम का परिणाम है, जबकि इसका विनियोग व्यक्तिगत और निजी है। माल का उत्पादन सामाजिक होता है, लेकिन उनका विनियोग उत्पादकों द्वारा नहीं, बल्कि उत्पादन के साधनों के मालिक, पूँजीपतियों द्वारा होता है।

इसका सीधा सा समाधान है कि उत्पादन के सामाजिकीकरण और उत्पादन के साधनों के सामाजिक मलिकाने, दोनों को एक साथ जोड़ दिया जाये। सामाजिक उत्पादन और निजी विनियोग के बीच के अन्तरविरोध को हल करने का उपाय यही है कि सामाजिक उत्पादन की पूँजीवादी प्रक्रिया के विकास को उसकी तार्किक परिणति-सामाजिक मालिकाने तक ले जाया जाय।

आज अमरीका में ज्यादातर व्यापार पूँजीवादी निगमों द्वारा चलाये जाते हैं जिसमें मालिकों का शेयर होता है और वे मुनाफा कमाते हैं, लेकिन उद्यम के प्रबंधन और संचालन का काम वेतन पर रखे गये अधिकारी करते हैं। मालिक इसके संचालन में नाममात्र का काम करते हैं या कुछ भी काम नहीं करते। मालिकाना जो कभी क्रियाशील था आज पूर्णतः परजीवी है। एक वर्ग के रूप में पूँजीपतियों की आज कोई जरूरत नहीं रह गयी है। अगर उन्हें चाँद पर भेज दिया गया होता, तो भी उत्पादन को एक मिनट के लिए भी बंद करने की जरूरत नहीं होती।

उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने और मुनाफा कमाने की मंशा के दिन लद चुके हैं। पूँजीवाद अपनी उपयोगिता से ज्यादा दिन जिन्दा रह चुका है।

इसकी जगह पर एक नयी सामाजिक व्यवस्था उदित हो रही है। वह है --समाजवाद।

भाग 3

बदलाव के पक्षधर

13. काल्पनिक समाजवादी

समाजवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें पूँजीवाद की तरह उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाना न होकर उस पर सामूहिक मालिकाना होता है। मुनाफे के लिए अराजक उत्पादन न होकर उपयोग के लिए योजनाबद्ध उत्पादन होता है।

समाजवाद का विचार नया नहीं है। पूँजीवादी व्यवस्था जब औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत और फैक्ट्री व्यवस्था में वृद्धि होने के साथ लम्बे डग भर रही थी, तभी विचारशील लोग यह देख चुके थे कि यह अपर्याप्त, अयोग्य, विवेकहीन और अन्यायी है।

सन 1800 की शुरुआत में ही, इंग्लैण्ड और फ्रांस दोनों ही जगह पूँजीवाद की बुराइयों को पर्चों, पुस्तकों और भाषणों के जरिये जनता के सामने लाया गया था। इसकी आलोचनाएँ 16वीं सदी और उसके बाद हर सदी में होती रही। लेकिन इसके शुरुआती लेखक मुख्यतः अलग-थलग पड़े विचारक ही थे, जिन्होंने कभी अपने अनुयायियों को तैयार नहीं किया। लेकिन अब यह स्थिति बदल गयी थी। इंग्लैण्ड में रॉबर्ट ओवेन और फ्रांस में चार्ल्स फुरिये व कोमते हेनरी दे सेंट-साइमोन को सही मायने में अग्रणी समाजवादी कहा जा सकता है, क्योंकि इन सभी के इर्द-गिर्द एक अच्छा-खासा आन्दोलन विकसित हुआ था। उनकी किताबें व्यापक स्तर पर पढ़ी जाती थी। उनके भाषण बहुत बड़े श्रोता वर्ग को आकर्षित करते थे और इनके जरिये समाजवाद का विचार अन्य जगहों, यहाँ तक की दूरस्थ संयुक्त राज्य अमरीका तक फैल गया।

समाज जैसा है, उसकी भर्त्सना करके ही वे सन्तुष्ट नहीं हुए। वे इससे भी आगे गये। उनमें से प्रत्येक ने अपने तरीके से समाज को कैसा होना चाहिए, इसकी सावधानी पूर्वक सुनियोजित योजना तैयार करने में अपना महत्त्वपूर्ण समय और श्रम खर्च किया।

इनमें से प्रत्येक ने भविष्य के आदर्श समाज के अपने नजरिये की ब्योरेवार व्याख्या के लिए भरपूर काम किया। हालाँकि उनकी निजी कल्पनाएँ एक-दूसरे से ही बहुत भिन्न थीं, लेकिन वे एक आदर्श पर आधारित थीं।

उन सभी की काल्पनिक योजना का सबसे महत्त्वपूर्ण पहला सिद्धान्त पूँजीवाद का नाश करना था। उन्हें पूँजीवादी व्यवस्था में केवल बुराई ही दिखती थी, क्योंकि वह अपव्ययी, अन्यायी और योजनाविहीन थी। वे एक ऐसा सुनियोजित समाज चाहते थे जो

कुशल और न्यायशील हो। पूँजीवाद के तहत कुछ लोग जो कोई काम नहीं करते, उत्पादन के साधनों पर अपने मालिकाने के चलते आरामदेह और अय्याशी की जिन्दगी जीते हैं। काल्पनिक समाजवादियों ने उत्पादन के साधनों पर सामूहिक मालिकाने की व्यवस्था को अच्छी जिन्दगी के साधन का उत्पादन करने वाली व्यवस्था के रूप में देखा था। इसलिए उन्होंने अपने सपने के समाज की ऐसी योजना बनायी, जिसमें बहुत सारे लोग, जो काम करते हैं वे उत्पादन के साधनों पर अपने मालिकाने के चलते आरामदेह व खुशहाली का जीवन जिएँगें।

यह समाजवाद था और यह काल्पनिक समाजवादियों का सपना था।

यह काल्पनिक समाजवादियों के लिए एक सपना ही बना रहा, क्योंकि वे यह तो जानते थे कि उन्हें कहाँ जाना है, लेकिन वहाँ कैसे पहुँचा जाय, इसे लेकर उनके मन में केवल एक धुँधली सी धारणा भर थी। उनका यकीन था कि केवल आदर्श समाज की उनकी योजना का सूत्रीकरण करने की जरूरत है, शक्ति सम्पन्न या अमीरों (या दोनों को ही) की इस नयी व्यवस्था के सत्य और सौन्दर्य के प्रति रुचि जगानी है, इसे लेकर छोटे स्तर पर प्रयोग करना है और तब लोगों के औचित्यबोध के भरोसे इसे जमीन पर उतारना है।

काल्पनिक समाजवादियों का भोलापन इसी तथ्य में दिखाई देता है कि वे उन समूहों से अपील कर रहे थे, जिनके हित स्पष्ट रूप से चीजों को वैसे ही बनाये रखने में थे जैसी वे हैं, न कि उनके बदलाव में। मजदूर वर्ग के राजनीतिक और आर्थिक आन्दोलनों से अपना नाता तोड़कर उन्होंने समाज में कार्यरत शक्तियों के बारे में अपनी नासमझी का ही परिचय दिया। उनका सारा जोर इसी पर था कि नये समाज का निर्माण सभी लोगों की अच्छी भावना और समझदारी मात्र से ही होगा, न कि एक वर्ग के रूप में मजदूरों के संगठनों के दम पर।

इसी तरह उनका यह विचार भी यथार्थ से मेल नहीं खाता कि वे अपनी काल्पनिक रूपरेखा के अनुरूप छोटे-छोटे सामाजिक प्रयोग करने में सफल हो जाएँगे।

जैसा कि पहले से ही अंदाज लगाया जा सकता था कि "पूँजीवादी विपत्ति के गहरे समुद्र में उनके आनन्दमय द्वीप" का डूब जाना तय था। पूँजीवादी व्यवस्था को बाकी दुनिया से काटकर छोटे-छोटे अलग-थलग समुदायों में नहीं सुधारा जा सकता था।

काल्पनिक समाजवादी मानवतावादी थे जो पूँजीवाद के निष्ठुर वातावरण का तीखा प्रतिवाद करते थे। उन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था की उचित और व्यापक आलोचना की तथा एक बेहतर दुनिया के निर्माण की योजनाएँ तैयार की। जिस दौरान वे अपने नए मत का प्रचार कर रहे थे, दो ऐसे इनसान पैदा हुए जो इसी समस्या पर दूसरे तरीके से पहुँचने की कोशिश कर रहे थे।

उनके नाम थे- कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंगेल्स।

14. कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंगेल्स

कल्पनावादियों का समाजवाद अन्याय के प्रति मानवतावादी भावनाओं पर आधारित था। मार्क्स और एंगेल्स का समाजवाद मनुष्य के ऐतिहासिक, आर्थिक और सामाजिक विकास के अध्ययन पर आधारित था।

कार्ल मार्क्स ने किसी स्वप्नलोक की योजना नहीं बनायी। उन्होंने व्यवहारतः इस बारे में कुछ नहीं लिखा कि भविष्य का समाज किस तरह से काम करेगा। उनकी जबरदस्त रुचि अतीत के समाज में थी, उसका उदय, विकास और विनाश कैसे हुआ और वहाँ से लेकर आज का समाज कैसे बना। वर्तमान समाज में भी उनकी अत्यन्त रुचि थी क्योंकि वह इसमें उस शक्ति को तलाशना चाहते थे जो भविष्य के समाज का निर्माण करने के लिए आगे बदलाव करेगी।

कल्पनावादियों की तरह, मार्क्स ने आने वाले कल के आर्थिक संस्थानों पर समय खर्च नहीं किया। उन्होंने अपना लगभग सारा समय आज के आर्थिक संस्थानों के अध्ययन में लगाया।

मार्क्स जानना चाहते थे कि वह क्या चीज है जो पूँजीवादी समाज के पहिये को चलाती रहती है, उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण किताब का शीर्षक है, *पूँजी- पूँजीवादी समाज का एक आलोचनात्मक विश्लेषण* जो यह दिखाता है कि उनकी रुचि और उनका ध्यान

हालाँकि हम लगातार मार्क्स के विचारों का हवाला देते रहेंगे; लेकिन इससे समाजवादी विचारों के विकास में, एंगेल्स के योगदान को कम नहीं किया जाना चाहिए। मार्क्स और एंगेल्स बीस साल के थे जब वे पहली बार मिले थे। वे जिन्दगी भर एक-दूसरे के दोस्त और सहयोगी बने रहे। निसन्देह ऐसी महानतम बौद्धिक साझेदारी दुनिया ने पहले शायद ही कभी देखी हो। हालाँकि एंगेल्स अपने आप में ही एक जाने माने चिन्तक थे और मार्क्स से मुलाकात के पहले ही अपने बुनियादी दार्शनिक सिद्धान्तों तक स्वतंत्र रूप से पहुँच गये थे, फिर भी इस लम्बी साझेदारी के दौरान उनके सहयोगी के रूप में अपनी भूमिका को स्वीकार किया। 1888 में उन्होंने अपने सम्बन्धों का सार इन शब्दों में व्यक्त किया--"मैं इस बात से नकार नहीं सकता कि मार्क्स के साथ अपनी 40 साल की साझेदारी के दौरान और उससे पहले भी इस सिद्धान्त की नींव रखने में या ज्यादा ठोस रूप से कहें तो, इसका विस्तार करने में कुछ हद तक मेरी स्वतंत्र हिस्सेदारी थी, लेकिन इसके बुनियादी सिद्धान्तों का बड़ा भाग, विशेषकर अर्थशास्त्र और इतिहास के क्षेत्र में और इससे भी ज्यादा इनका अन्तिम रूप से और स्पष्ट सूत्रीकरण का श्रेय मार्क्स को है। हम सभी लोगों में मार्क्स सबसे कद्दावर थे, उनमें दूरदृष्टि थी और उनका नजरिया ज्यादा व्यापक और तीक्ष्ण था। हम दूसरे सभी बहुत अच्छे प्रतिभावान लोग थे। मार्क्स विलक्षण प्रतिभाशाली थे।"

करना है, तो उसे अवश्य ही शासक वर्ग के राज्य को ध्वस्त कर उसकी जगह अपने खुद के राज्य को स्थापित करना चाहिए। मजदूर वर्ग केवल सत्ता प्राप्त कर सकता है, लेकिन उसकी क्रान्ति केवल तभी सफल होगी जब शासक वर्ग का राज्य ध्वस्त हो जायेगा और उसकी जगह पर मजदूर वर्ग अपना राज्य स्थापित करेगा।

पहली नजर में यह केवल पूँजीपति वर्ग की तानाशाही की जगह पर मजदूर वर्ग की तानाशाही का आना प्रतीत होता है। क्या मजदूर वर्ग की क्रान्ति का लक्ष्य सिर्फ इतना ही है कि मजदूर वर्ग को उस वर्ग का शासक बना देना जिसकी पहले वे प्रजा थे?

नहीं, सर्वहारा की तानाशाही केवल उस वर्गीय शासन को हमेशा के लिए खत्म करने की प्रक्रिया का अनिवार्य पहला चरण है। यह उन परिस्थितियों को समाप्त करना है जिनमें समाज विभाजित होकर वर्गों में बँट गया था। समाजवादी लक्ष्य यह नहीं है कि एक वर्ग के शासन की जगह दूसरे वर्ग का शासन स्थापित किया जाय, बल्कि उसका लक्ष्य वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना है, जिसमें शोषण के सभी रूपों को जड़ से मिटा दिया जायेगा। घोषणापत्र के शब्दों में "वर्ग और वर्ग विरोधों वाले पुराने पूँजीवादी समाज की जगह हमें एक ऐसा समाज बनाना होगा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का स्वतंत्र विकास ही सभी लोगों के स्वतंत्र विकास की शर्त होगी।"

मार्क्स ने हमेशा और हर कहीं इस बात पर जोर दिया कि पुराने वर्ग समाज से नयी वर्गहीन व्यवस्था में रूपान्तरण मजदूर वर्ग, सर्वहारा वर्ग के द्वारा ही हासिल होगा। उन्होंने समाजवाद लाने की प्रक्रिया में सर्वहारा को सक्रीय भूमिका में देखा क्योंकि जनसंख्या में सबसे अधिक होने के बावजूद वह पूँजीवाद के अन्तरविरोधों को सबसे ज्यादा झेलता है, क्योंकि उसके पास कोई रास्ता भी नहीं है कि वह अपनी स्थिति बेहतर बना सके।

मजदूर जिस भयावह परिस्थिति में रहते थे, उसने उन्हें एक साथ जुड़ने, संगठित होने और अपने हितों के लिए यूनियन बनाकर संघर्ष करने पर मजबूर कर दिया। हालाँकि ट्रेड यूनियनें रातों-रात नहीं बन गयीं। वर्ग हितों के लिए एकता की भावना मजबूत होने में बहुत लम्बा समय लगा और जब तक यह नहीं हुआ राष्ट्रीय स्तर का मजबूत संगठन बनना सम्भव नहीं हो पाया।

औद्योगिक क्रान्ति और फैक्ट्री व्यवस्था के साथ पूँजीवाद के विस्तार ने ही ट्रेड यूनियनवाद की प्रगति को आश्चर्यजनक रूप से सम्भव बनाया। यह इसलिए हुआ क्योंकि औद्योगिक क्रान्ति अपने साथ शहरों में मजदूरों का संकेन्द्रण लेकर आयी, राष्ट्रव्यापी संगठन के लिए परिवहन और दूरसंचार में सुधार बहुत ही मूलभूत आवश्यकताएँ हैं और वह परिस्थितियाँ भी जो एक मजदूर आन्दोलन को जरूरी बना देती हैं। इस तरह मजदूर वर्ग के संगठन पूँजीवादी विकास के साथ ही बड़े हुए, जिसने वर्ग, वर्ग भावना और सहयोग व संचार की भौतिक प्रणाली को पैदा किया।

इस तरह सर्वहारा पूँजीवाद की पैदाइश है और यह उसी के साथ विकसित हुआ।

अन्ततः जब पूँजीवाद कमजोर हो जाता है, जब यह ऐसे अन्तरविरोधों से घिर जाता है जिन्हें यह हल नहीं कर सकता, जब "समाज इस पूँजीपति वर्ग के अन्तर्गत नहीं रह सकता, दूसरे शब्दों में, जब इसका अस्तित्व अब समाज के अनुकूल नहीं रह जाता," -संक्षेप में कहें कि जब पूँजीवाद कब्र में पाँव लटकाए तैयार बैठा हो, तब यही सर्वहारा इसे दफन करेगा।

मार्क्स कोई कुर्सी तोड़ किताबी क्रान्तिकारी नहीं थे जो दूसरे साथियों से यह कहकर ही सन्तुष्ट हो जाते कि क्या करना है और क्यों उन्हें ये करना चाहिए। नहीं। वह अपने दर्शन को जीते थे। और जहाँ तक उनके दर्शन की बात है तो वह दुनिया की व्याख्या भर नहीं है, बल्कि दुनिया को बदलने का एक उपकरण भी है। वह खुद भी एक गम्भीर क्रान्तिकारी के रूप में संघर्ष से परे नहीं थे, बल्कि उसका एक संघर्षशील हिस्सा थे। हाँ, यकीनन वह ऐसी ही थे।

उनके ठोस विचार के अनुसार पूँजीवाद का नाश करने का उपकरण सर्वहारा ही था। अपने अध्ययन से वे जो भी समय निकाल सकते थे उसे उन्होंने मजदूर वर्ग का उसके आर्थिक व राजनीतिक संघर्ष के लिए शिक्षित-दीक्षित करने व संगठित करने में समर्पित कर दिया। 28 सितम्बर, 1864 को लन्दन में स्थापित अन्तरराष्ट्रीय मजदूर संघ (पहला इंटरनेशनल) के वे सबसे सक्रिय व प्रभावशाली सदस्य थे। इसकी स्थापना के दो महीने बाद मार्क्स ने अपने जर्मन मित्र डॉ. कुगेलमान को एक पत्र लिखा कि "संघ का या कहें कि उसकी समिति का इसलिए बहुत महत्त्व है क्योंकि लंदन की ट्रेड यूनियनों (मजदूर संगठनों) के नेता उसमें शामिल हैं।... पेरिस के मजदूर नेता भी इससे जुड़े हुए हैं।"

ट्रेड यूनियनों को, जिसे ज्यादातर लोग मजदूरों की रोजमर्रे की जिन्दगी में सुधार के लिए बहुत ही तुच्छ संगठन मानते थे, मार्क्स और एंगेल्स के लिए इसकी गम्भीर प्रासंगिकता थी, "ट्रेड यूनियन के माध्यम से एक वर्ग के रूप में मजदूर वर्ग का संगठन... सर्वहारा का सच्चा वर्ग संगठन है जिसके जरिये वह पूँजी के विरुद्ध अपने रोजमर्रे का संघर्ष चलाता है, जिसमें वह अपने आप को खुद प्रशिक्षित करता है।"

वह अपने आप को क्यों प्रशिक्षित करता है? क्या वह ज्यादा मजदूरी पाने, काम के घण्टे कम करने, अपनी स्थिति को और बेहतर करने के लिए संघर्ष करता है? हाँ, बिल्कुल। लेकिन वह इससे भी महत्त्वपूर्ण संघर्ष करता है, जैसे कि वह उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने के खात्मे के जरिये मजदूर वर्ग की सम्पूर्ण मुक्ति के लिए संघर्ष करता है।

जून 1865 में इंटरनेशनल की सामान्य परिषद में भाषण देते हुए मार्क्स इस बिन्दु को सामने लाये। यह दर्शाने के बाद कि यदि यूनियन रोजमर्रे के संघर्ष नहीं करती तो "अतीत से चले आये अभागे जर्जर समूह के रूप में उनका पतन हो जायेगा," उन्होंने इस बात की विस्तार से व्याख्या की कि उनको एक बड़े लक्ष्य के लिए काम करना चाहिए "और ठीक इसी समय तथा मजदूरी की व्यवस्था में निहित सामान्य गुलामी से अलग,

मजदूर वर्ग को अपने इन रोजमर्रे के संघर्ष के कार्य को अन्तिम लक्ष्य के तौर पर अतिरंजित नहीं करना चाहिए। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि वह केवल प्रभावों से संघर्ष कर रहे हैं न कि इन प्रभावों के कारणों से, कि वे गिरावट की गति को मंद तो कर रहें हैं, लेकिन उसकी दिशा को नहीं बदल रहे हैं। उनकी कार्रवाइयाँ बहुत कम असरकारी हैं वह मर्ज का उपचार नहीं कर रहे हैं। उन्हें यह समझना चाहिए कि वह उनके ऊपर चाहे जितनी भी परेशानियाँ थोपती है, लेकिन मौजूदा व्यवस्था उन *भौतिक परिस्थितियों* और *सामाजिक रूपों* को भी पैदा करती है जो समाज के आर्थिक पुनर्गठन के लिए आवश्यक हैं। इस *संकीर्ण* उद्देश्य कि *'सही काम का सही दाम!'* के बजाय उन्हें अपने झण्डे पर इन क्रान्तिकारी शब्दों को अंकित करना चाहिए- 'मजदूरी की व्यवस्था का नाश हो!'

मार्क्स हर कहीं और हर वक्त अपने इन बुनियादी सबकों की शिक्षा देते हैं कि समाज के अर्थतंत्र, राजनीति और सामाजिक संगठन में बुनियादी बदलाव का एक ही रास्ता है कि मजदूर वर्ग क्रान्ति के जरिये इसे हासिल करे।

क्या सामान्य तौर पर इसका यही मतलब हुआ कि मार्क्स क्रान्ति के बहुत बड़े भक्त थे और कभी भी व कहीं भी क्रान्ति करना चाहते थे? नहीं, ऐसा नहीं है। मार्क्स अविवेकशील क्रान्ति के विरोधी थे। इंटरनेशनल में उन्होंने उन लोगों खिलाफ संघर्ष किया जो सिद्धान्तों में क्रान्ति की वकालत करते थे या जो यह तर्क करते थे कि क्रान्ति तो होगी ही, क्योंकि उसे होना ही है। मार्क्स के विचारों का सार यह है कि क्रान्ति को सफल होने के लिए उसे एक सही समय पर होना जरूरी है। समाज तब तक नहीं बदलेगा जब तक उसका आर्थिक विकास उसे बदलने को तैयार न हो।

समाज में बदलाव होने का आधार पूँजीवादी समाज के अपने अन्तरविरोधों का गहराते जाना है जो इसे विखंडन की ओर ले जाता है। उत्पादन के सामाजिकीकरण के द्वारा पुरानी व्यवस्था के गर्भ में नयी व्यवस्था के भ्रूण निर्मित होते हैं तथा मजदूर वर्ग की वर्गीय चेतना व संगठन में वृद्धि होती है जो जरूर ही क्रान्तिकारी कार्यों को बदलाव की ओर ले जाता है।

मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था को मानव विकास के इतिहास के एक अंग के रूप में देखा। यह न तो स्थाई था और न ही अपरिवर्तनीय। इसके बजाय पूँजीवाद मूलतः एक ऐसी अस्थाई सामाजिक व्यवस्था है जो मानव समाज के प्रत्येक अन्य रूपों की तरह अपने से पिछली व्यवस्था से पैदा हुई, विकसित हुई और क्षीण हो जायेगी तथा इसकी जगह एक दूसरी व्यवस्था ले लेगी। मार्क्स के लिए कोई भी मानव समाज गतिहीन नहीं था। सभी प्रवाह और बदलाव की सतत अवस्था में थे। जैसा कि उन्होंने बताया भी था, उनका काम पूँजीवाद की "गति के नियम" की खोज कर यह तलाशना था कि वह क्या चीज है जो पूँजीवादी समाज में बदलाव ला देती है। उन्होंने इसकी व्याख्या करने से शुरुआत की, लेकिन इसका अन्त महज खेद प्रकट करके नहीं किया, जैसा कि दूसरे अर्थशास्त्रियों ने

किया था, बल्कि उन ताकतों के लिए कार्रवाइयों की एक मार्गदर्शक निर्देशिका की रूपरेखा तैयार कर दी जो भविष्य में एक बेहतर समाज का निर्माण करेंगी।

समाजवादियों का विश्वास है कि मार्क्स द्वारा खींची गयी पूँजीवाद की तस्वीर युक्तिसंगत है और गैर-मार्क्सवादी अर्थशास्त्रियों द्वारा की गयी व्याख्याओं की तुलना में यथार्थ के ज्यादा नजदीक है। हॉवर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लियोनटिफ ने, हालाँकि वे मार्क्सवादी नहीं हैं, ठीक इसी बात को अमेरिकन इकनोमिक एसोसिएशन में कई साल पहले कहा था कि "अगर... कोई यह समझना चाहता है कि मुनाफा, मजदूरी और पूँजीवादी उद्यम असल में क्या हैं तो वह पूँजी के तीन खण्डों में इसकी सर्वाधिक यथार्थपूर्ण और प्रासंगिक जानकारी प्रत्यक्ष रूप से पा सकता है जिसे पाने की उम्मीद अमरीका के पिछले 10 जनगणना के सफल आँकड़ों या समकालीन आर्थिक संस्थानों की दर्जनों किताबों को पढ़कर भी नहीं की जा सकती।..."

इसी लेख में प्रोफेसर लियोनटिफ ने मार्क्स की उन कई भविष्यवाणियों की प्रशंसा भी की जो तब से सही साबित हुई थी-- "ये विवरण बहुत ही प्रभावशाली हैं-- सम्पदा के संकेन्द्रण का बढ़ना, छोटे और मध्यम आकार के उद्यमों का तेजी से खत्म होना, प्रतियोगिता का उत्तरोत्तर सीमित होना, निरन्तर तकनीकी विकास के साथ-साथ हमेशा ही इकट्ठा होती स्थिर पूँजी के महत्त्व का बढ़ते जाना, अन्तिम लेकिन बहुत ही महत्त्वपूर्ण कि बार-बार आने वाले व्यापार चक्र की बढ़ती तीव्रता- भविष्यवाणियों के सही होने का अचूक सिलसिला जिसके बारे में आधुनिक अर्थशास्त्री अपनी तमाम बारीकियों के बावजूद वास्तव में कुछ भी बताने में असमर्थ हैं।"

यह बहुत ही मजेदार है कि जिस समय हॉवर्ड के प्रोफेसर अर्थशास्त्र के अपने सहयोगी अध्यापकों को यह सलाह देना जरूरी समझते थे कि वे कार्ल मार्क्स से बहुत कुछ सीख सकते हैं, ठीक उसी समय एक अन्य जाने-माने विद्वान इतिहास के क्षेत्र में यही सलाह अपने सहकर्मियों को दे रहे थे। अमरीका के ख्यातिलब्ध इतिहासकार स्वर्गीय चार्ल्स बेअर्ड ने अक्टूबर 1935 में *अमेरिकन हिस्टोरिकल रिव्यू* में एक लेख लिखा था। उन्होंने लिखा कि "जो मार्क्स को महज एक क्रान्तिकारी या इसके एक कट्टर हिमायती के तौर पर देखते हैं, उन्हें यह याद दिलाना सही होगा कि वे इससे भी बढ़कर थे। वह एक जर्मन विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र के आचार्य थे। यह विद्वान होने का प्रमाण था। वह ग्रीक और लैटिन शिक्षा के विद्यार्थी थे। अपनी मातृभाषा जर्मन के अतिरिक्त उन्होंने ग्रीक, लैटिन, फ्रांसीसी, अंग्रेजी, इतावली और रूसी पढ़ी। उन्होंने व्यापक रूप से समकालीन इतिहास और आर्थिक सिद्धान्त पढ़े थे। इसलिए, हालाँकि कोई मार्क्स के निजी विचारों को पसन्द न भी करता हो, लेकिन फिर भी कोई उनके व्यापक और गहरे ज्ञान तथा निडर और समर्पित जीवन को नकार नहीं सकता। उन्होंने इतिहास की केवल व्याख्या ही नहीं की, जैसा कि हर कोई विद्वान करता है जो इतिहास लिखता है, बल्कि

उन्होंने इतिहास बनाने में भी सहयोग किया। शायद उन्हें कुछ तो पता था।"

दुनिया के लगभग हर देश में मजदूर वर्ग के आन्दोलन सामाजिक और आर्थिक न्याय प्राप्त करने के लिए प्रयासरत हैं। वह सोचते हैं कि उन्हें शायद इसकी कुछ जानकारी थी।

एशिया और अफ्रीका की औपनिवेशिक जनता का अपनी मुक्ति और स्वाधीनता का संघर्ष उनकी शिक्षाओं पर आधारित है। वे सोचते हैं कि उन्हें शायद इसकी कुछ जानकारी थी।

पूर्वी यूरोप के देश मुनाफे के लिए अराजक उत्पादन की जगह उपयोग के लिए सुनियोजित उत्पादन करने का प्रयास कर रहे हैं। वे यकीन करते हैं कि उन्हें शायद इसकी कुछ जानकारी थी।

दुनिया के हर पूँजीवादी देश के विशेषाधिकार प्राप्त कुछ लोग अपनी सत्ता की डगमगाती कुर्सी को सुरक्षित बनाये रखने की निराशाजनक कोशिश कर रहे हैं। वे इसी डर से काँप रहे हैं कि उन्हें शायद इसकी कुछ जानकारी थी।

दुनिया के छठे भाग के देश की जनता सफलतापूर्वक पूँजीवाद को उखाड़ फेंक रही है और यह प्रदर्शित कर रही है कि समाजवाद वर्ग भेदों को खत्म कर सकता है और इनसान की चेतना को इस योग्य बना सकता है कि वह अपनी अर्थव्यवस्था को सभी की भलाई में लगा सके। वे निश्चित तौर पर मानते हैं कि वे कुछ जानते थे।

भाग -4

समाजवाद

15. समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था

अब हम समाजवाद के एक विश्लेषण पर आते हैं। हमें प्रारम्भ से ही यह स्पष्ट करने दें कि समाजवाद में यकीन करने वाले यह तर्क नहीं करते हैं कि उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने को सामाजिक मालिकाने में बदलने से सभी इनसानों की समस्याएँ हल हो जाएँगी। यह दुष्टों को देव पुरुष नहीं बना देगा और न ही यह धरती पर स्वर्ग को उतार लायेगा। हालाँकि यह दावा किया जा सकता है कि समाजवाद, पूँजीवाद की मुख्य बुराइयों को दूर करेगा-- शोषण, दरिद्रता, असुरक्षा और युद्ध का अन्त करेगा और इनसान के अत्यधिक कल्याण व खुशहाली को कायम करेगा।

समाजवाद का अर्थ यह नहीं है कि पूँजीवाद में ही टुकड़ा-टुकड़ा सुधार की चिप्पी चिपकायी जाये। इसका अर्थ होता है एक क्रान्तिकारी बदलाव, एकदम भिन्न कार्यदिशा के साथ समाज का पुनर्निर्माण।

निजी मुनाफे के लिए निजी प्रयासों के बजाय इसमें सामूहिक लाभ के लिए सामूहिक प्रयास होंगे।

कपड़ा बनाया जायेगा, लेकिन इसलिए नहीं कि उससे पैसा कमाया जाय, बल्कि लोगों को कपड़ा उपलब्ध कराने के लिए और अन्य सामानों को भी इसीलिए तैयार किया जायेगा।

मनुष्य के ऊपर मनुष्य की सत्ता कमजोर हो जायेगी और प्रकृति के ऊपर मनुष्य की सत्ता बढ़ जायेगी।

प्रचुर उत्पादन क्षमता का इस्तेमाल, मुनाफे को ध्यान में रखकर किये गये गलाघोंटू उत्पादन की जगह सभी लोगों को भरपूर सुविधा उपलब्ध कराने की भरसक कोशिश करने में होगा।

सर पर मँडराती मन्दी, बेरोजगारी, अभाव और असुरक्षा का भय इस समझदारी से दूर हो जायेगा कि उपयोग के लिए नियोजित उत्पादन सभी के लिए रोजगार सुनिश्चित करेगा और पैदा होने से लेकर कब्र तक, हर समय आर्थिक सुरक्षा मुहैय्या करेगा।

जब सफलता इस बात से तय नहीं होगी कि आपकी जेब कितनी मोटी है, बल्कि इससे तय होगी कि आप अपने सहकर्मी के साथ किस हद तक सहयोग करते हैं, तब

स्वर्णिम कानून, सोने से नियंत्रित कानून की जगह ले लेंगे।

उस साम्राज्यवादी युद्ध का अन्त हो जायेगा जो मुनाफाखोरों द्वारा विदेशी बाजार पर कब्जा करने का नतीजा है, ताकि वहाँ वे अपना अतिरिक्त माल बेच सकें और अपनी अतिरिक्त पूँजी का निवेश कर सकें। तब कोई अतिरिक्त माल और पूँजी नहीं रहेगी और न ही मुनाफाखोर।

जब उत्पादन के साधन निजी हाथों में नहीं रहेंगे, तब समाज मालिक और मजदूर जैसे वर्गों में विभाजित नहीं होगा। कोई भी मनुष्य किसी दूसरे का शोषण करने की स्थिति में नहीं होगा। 'अ' इस योग्य नहीं होगा कि 'ब' के श्रम से मुनाफा कमाये।

संक्षेप में कहें, तो समाजवाद का सार है कि देश पर कुछ लोगों का मालिकाना नहीं होगा और वह अव्यवस्था नहीं होगी जो उनके अपने लाभ के लिए है। तब देश पर जनता के लाभ के लिए, जनता द्वारा प्रबंधित, जनता का मालिकाना होगा।

अभी तक हमने समाजवाद के केवल एक "मूल" भाग की ही चर्चा की है। यानी देश पर "जनता का मालिकाना" होगा, दूसरे शब्दों में कहें तो उत्पादन के साधनों पर सार्वजानिक मालिकाना होगा। अब हम इस परिभाषा पर आते हैं "जनता के लाभ के लिए जनता द्वारा प्रबंधन।" ये कैसे पूरा होगा?

इस सवाल का जवाब है *केन्द्रीकृत योजना* से। जैसे उत्पादन के साधनों पर सार्वजानिक मालिकाना समाजवाद का सार है, वैसे ही केन्द्रीकृत योजना भी इसका सार तत्व है।

निश्चित ही पूरे राष्ट्र के लिए एक केन्द्रीकृत योजना एक कठिन काम है। यह बहुत ही मुश्किल है क्योंकि पूँजीवादी देशों में बहुत सारे लोगों को यह यकीन है कि ऐसा हो ही नहीं सकता- खासकर वे लोग जो उत्पादन के साधनों के मालिक हैं और इस कारण वे सोचते हैं कि सम्भावित दुनिया में पूँजीवाद ही सर्वश्रेष्ठ है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय उद्यमी संघ (नेशनल एसोसिएशन ऑफ मैन्युफैक्चरर्स) की इस बात पर बहुत सहमति है। वह इसे बार-बार दोहरा चुकी है। कुछ समय पहले अपने "अमरीकी उद्योगों के लिए मंच" में इस विषय पर उसके जो विचार थे यह उसकी सबसे स्पष्ट और सबसे सीधी बानगी है-- "लोगों का छोटा सा समूह बुद्धिमानी का स्वामी नहीं हो सकता। योजना के लिए दूरदृष्टि और विवेक की जरूरत होती है, जो सभी लोगों की कार्रवाइयों को सफलतापूर्वक निर्देशित और प्रोत्साहित करती है।"

यह अभियोग अगर सच है तो समाजवाद के लिए भी बहुत ही गम्भीर है। समाजवादी अर्थव्यवस्था को एक नियोजित अर्थव्यवस्था *होना चाहिए* और अगर नियोजन सम्भव नहीं तो समाजवाद भी सम्भव नहीं है।

क्या केन्द्रीकृत नियोजन सम्भव है? 1928 में ऐसा कुछ हुआ था जिसने नियोजन के सवाल को अटकलबाजियों के दायरे से बाहर लाकर जमीनी सवाल के रूप में पेश किया। 1928 में सोवियत समाजवादी प्रजातान्त्रिक संघ (यूएसएसआर) ने अपनी पहली पंचवर्षीय योजना तैयार की। जब यह पूरी हो गयी तो उसने दूसरी पंचवर्षीय योजना शुरू

की और उसके बाद तीसरी पंचवर्षीय योजना (और ये हमेशा-हमेशा ही चलती जायेगी जब तक की रूस समाजवादी है, क्योंकि जैसा कि हम देख ही चुके हैं एक समाजवादी राज्य *के पास* योजना है।)

अब इस बारे में हमें ज्यादा अटकलें लगाने कि जरूरत नहीं है कि किसी राष्ट्र के लिए केन्द्रीकृत नियोजन सम्भव है या नहीं। अब हम यह जानते हैं। सोवियत संघ इसका प्रयास कर चुका है। यह कारगर है। यह सम्भव है।

सोवियत जिन्दगी की इस या उस विशिष्टता के बारे में चाहे कोई कुछ भी सोचे, बिना ये परवाह किये कि वह सोवियत संघ को पसन्द करने वाला है या नफरत करने वाला, उसे ये स्वीकार करना ही होगा, यहाँ तक कि उसके सबसे बड़े दुश्मन को भी, कि उसके पास नियोजित अर्थव्यवस्था है। यहाँ यह समझने के लिए कि एक समाजवादी देश में नियोजित अर्थव्यवस्था का संचालन कैसे किया जाता है, हमें रूसी मॉडल को जाँचना-परखना चाहिए।

एक योजना में क्या चीजें शामिल होती हैं? जब आप या हम कोई योजना बनाते हैं, जब कोई भी एक योजना बनाता है तो उसके दो भाग होते हैं। पहला, *किस लिए* और दूसरा *कैसे*, पहला लक्ष्य और दूसरा तरीका। लक्ष्य हमारी योजना का पहला भाग होता है और उस तक कैसे पहुँचना है यह दूसरा भाग होता है।

समाजवादी नियोजन के साथ भी ऐसा ही है। उसका एक लक्ष्य और एक तरीका है। स्वर्गीय सिडनी और बेटरीक वेब्ब (जिनका सोवियत संघ का अध्ययन हालाँकि तीन दशक पहले *सोवियत कम्युनिज्म : ए न्यू सिविलाइजेशन?* (सोवियत साम्यवाद : एक नयी सभ्यता?) नाम से प्रकाशित हुआ था, लेकिन यह अब भी सामाजिक विज्ञानों में अग्रणी शोधवृत्ति का एक शानदार आजीवन कीर्तिस्तम्भ है।) ने समाजवादी नियोजन के लक्ष्य और दूसरे छोर पर पूँजीवादी देशों में जो लक्ष्य दिखायी देते हैं उनके बीच मूलभूत अन्तर को दर्शाया है। "एक पूँजीवादी देश में सबसे बड़े इंटरप्राइजेज का भी उद्देश्य यही होता है कि उसके मालिकों और शेयर धारकों को आर्थिक मुनाफा प्राप्त हो... सोवियत संघ में जिसे सर्वहारा की तानाशाही कहा जाता है वहाँ जो भी योजनाएँ बनी हैं वे बहुत ही भिन्न तरह की हैं। वहाँ कोई भी मालिक या शेयरधारक नहीं है जिन्हें लाभ पहुँचाया जाना होता हो और न ही आर्थिक मुनाफा कमाने पर ही कोई ध्यान देता है। उनका मुख्य लक्ष्य पूरे समुदाय की दीर्घजीविता व अधिकतम सुरक्षा और खुशहाली है।"

एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में नियोजन के लक्ष्य के लिए यह बहुत काफी है। हम पहले ही इस तथ्य पर बातचीत कर चुके हैं कि लोगों की जरूरत मुनाफा नहीं, बल्कि एक व्यापक सामान्य लक्ष्य है। यहाँ जिस बात पर हमने बहुत कम ध्यान दिया है वह किसके लिए नहीं, बल्कि कैसे पर है, यानी लक्ष्य नहीं, तरीके पर जो उसके साथ ही है। हम ये जानना चाहते हैं कि अपने वांछित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हमें क्या नीतियाँ अपनानी चाहिए।

जरूरतें तो असीमित हैं। लेकिन इन जरूरतों को पूरा करने के लिए उत्पादक

संसाधनों की जो उपलब्धता है वह सीमित है। जो नीतियाँ अपनायी गयी हैं वे इस पर आधारित होनी चाहिए कि क्या करना सम्भव है, न की इस पर कि सोवियत योजनाकार क्या करना चाहेंगे। ये सम्भावनाएँ तभी मापी जा सकती हैं जब देश के उत्पादक संसाधनों की एक पूर्ण और सटीक जानकारी हो।

राज्य योजना आयोग (गॉसप्लान) का यही काम है।

इसका पहला काम यही है कि यह सोवियत संघ के बारे में कौन है, क्या है, कहाँ है और कैसे है की खोज करे। देश के प्राकृतिक संसाधन क्या हैं? वहाँ कितने मेहनतकश उपलब्ध हैं? कितनी फैक्ट्रियाँ, खदानें, मिल, फार्म हैं और वे कहाँ स्थित हैं? उन्होंने पिछले साल क्या उत्पादन किया? अतिरिक्त सामान और मेहनतकशों से वे क्या पैदा कर सकते हैं? क्या और ज्यादा रेलगाड़ियों और बंदरगाहों की जरूरत है? वे कहाँ स्थापित होने चाहिए? क्या उपलब्ध है? किस चीज की जरूरत है?

तथ्यों, आँकड़ों, सांख्यिकीय और इनका अम्बार।

विशाल भू-भाग वाले सोवियत संघ का प्रत्येक संस्थान, हर फैक्ट्री, फार्म, मिल, अस्पताल, विद्यालय, शोध संस्थान, ट्रेड यूनियन, सहकारी सोसाइटी, थियेटर ग्रुप हर कहीं से इन सभी से इस विशाल क्षेत्र के दूर-दराज के कोने-कोने से इन सवालों का जवाब मिला कि पिछले साल तुमने क्या किया था? इस साल तुम क्या कर रहे हो? अगले साल तुम्हारी क्या करने की उम्मीद है? किस मदद की तुम्हें जरूरत है? तुम क्या मदद दे सकते हो? और इसी तरह के सैकड़ों अन्य सवाल।

गॉसप्लान के कार्यालय में यह सारी जानकारी उड़ेल दी जाती जहाँ विशेषज्ञों द्वारा इन्हें संलग्न किया जाता, व्यवस्थित किया जाता और उनका सार संग्रह किया जाता। "सोवियत संघ गॉसप्लान के सारे कर्मचारी अब किसी परिमाण को लेकर कुछ एक-दो हजार सांख्यकीय विशेषज्ञों और विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक तकनीशियनों तक पहुँचा रहे हैं जिनके मातहत इससे भी ज्यादा लिपिक हैं। निश्चित तौर पर यह पूरी दुनिया में सांख्यकीय परीक्षण की सर्वोत्तम सामग्री व सबसे विस्तृत स्थायी मशीन है।"

जब ये विशेषज्ञ इकट्ठा किये गये इन आँकड़ों को छाँटने, व्यवस्थित करने और उन्हें जाँचने का काम कर चुके तो उनके पास चीजों की वही तस्वीर थी जैसी कि वे हैं। लेकिन ये उनके काम का सिर्फ एक भाग है। अब उन्हें अपना दिमाग इस सवाल पर लगाना है कि चीजें वैसी ही हों जैसा कि उन्हें होना ही चाहिए। इस बिन्दु पर योजनाकारों को सरकार के प्रमुखों से मिलना जरूरी है। "राज्य योजना आयोग और उसकी परियोजना के निष्कर्ष सरकार की मंजूरी का विषय था। योजना का कार्य, नेतृत्व के कार्य से अलग था और सरकार योजनाकारों के मातहत नहीं थी।"

योजना निश्चित तौर पर उस नीति के बारे में निर्णय लिये जाने की आवश्यकता से इन्कार नहीं करती जिसे उस योजना को लागू करना होता है। नीति सरकार के प्रधानों द्वारा निर्धारित होती है, योजनाकारों का काम है कि जो सूचना उन्होंने जुटायी है उसके आधार

पर वे उस नीति को लागू करने के लिए सबसे उपयुक्त तरीके तलाश करें। गॉसप्लान और नेताओं के बीच हुई परिचर्चा के बाद योजना का पहला प्रारूप सामने आता है।

लेकिन यह सिर्फ पहला प्रारूप ही है। अभी यह योजना नहीं बनी है। क्योंकि समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था के तहत बुद्धिमान लोगों द्वारा बनायी गयी योजना अपने आप में पर्याप्त नहीं होती। इसे जनता के बीच में प्रस्तुत करना भी जरूरी होता है। यही अगला चरण होता है। "'जाँच-पड़ताल के बाद तैयार किये गये आँकड़ों' को उन विभिन्न जन कमिसारों और अन्य केन्द्रीय निकायों के सामने पढ़ने और उस पर राय देने के लिए प्रस्तुत किया जाता है जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखते हैं, उदाहरण के लिए भारी उद्योग, हल्के उद्योग, वाणिज्य, परिवहन, विदेशी व्यापार आदि के जन कमिसार। प्रत्येक केन्द्रीय प्राधिकरण अपनी योजना के विभिन्न कामों को अपने से नीचे वाले प्राधिकरण के पास भेजता है जिससे अन्ततः योजना का समुचित भाग प्रत्येक फैक्ट्री या फार्म तक नीचे पहुँचता है। हर कदम पर इन 'जाँच-पड़ताल के बाद तैयार किये गये आँकड़ों की जाँच-पड़ताल होती है और उन पर विचार विमर्श किया जाता है। जब ये (जाँच-पड़ताल के बाद तैयार किये गये आँकड़े) राज्य योजना समिति से निकलकर अपनी यात्रा के अन्तिम पड़ाव, यानी फैक्ट्री या सामूहिक फार्मों में पहुँचते हैं तब उत्साहित मजदूर और किसान इस योजना पर सक्रिय रूप से सलाह-मशविरा तथा सोच-विचार करते हैं और रूपरेखा तैयार कर अपनी सलाहें देते हैं। फिर 'जाँच-पड़ताल के बाद तैयार किये गये इन आँकड़ों' को तब तक के लिए इसी रूप में ऊपर भेज दिया जाता है जब तक कि राज्य योजना समिति उनमें संशोधन या सुधार कर अन्तिम तौर पर वापस न भेजे।"

फैक्ट्रियों में मजदूर व खेतों में किसान, योजना के अच्छे और बुरे पहलूओं पर अपनी राय जाहिर करते हैं। यही वह तस्वीर है जिस पर रूसी ठीक ही गर्व करते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि ये मजदूर और किसान विशिष्ठ रूप से अपने कार्यस्थल में जाँच-पड़ताल के बाद तैयार किये गये इन आँकड़ों पर असहमति जताते हैं। कई बार वे केन्द्रीय योजना के बरक्स अपनी योजना प्रस्तुत करते हैं, जिसमें वे यह दिखाने के लिए अपने आँकड़े देते हैं कि वे उस योजना के बजाय इस नयी योजना से ज्यादा उत्पादन कर सकते हैं। लाखों सोवियत नागरिकों द्वारा हर कहीं इस अन्तरिम योजना पर इस तरह से सलाह-मशविरा और वाद-विवाद करना रूसियों को असली जनवाद से परिचित कराता है। कार्य योजना पूरी होनी है और लक्ष्य प्राप्त होगा और यह ऊपर से थोपा हुआ भी नहीं है। मजदूरों और किसानों की आवाजें भी इसमें शामिल हैं। इसका परिणाम क्या हुआ? एक सुयोग्य पर्यवेक्षक ने इसका यह जवाब दिया "आप कहीं भी जाएँ, कम से कम रूस के जितने भाग को मैंने देखा, आप पाएँगे कि मजदूर गर्व से आपको बता रहें हैं कि 'यह *हमारी* फैक्ट्री है, यह *हमारा* अस्पताल है, यह *हमारा* विश्राम-गृह है' इसका मतलब यह नहीं है कि वे व्यक्तिगत तौर पर इन सब चीजों के मालिक हैं। बल्कि वे लोग काम कर रहे थे और उत्पादन कर रहे थे... तो सीधे तौर पर उनके फायदे के लिए और वे इस बारे

में सजग थे, उससे भी ज्यादा वे इस बारे में भी सजग थे कि वे ठीक से काम कर रहें हैं, कि वे अपनी जिम्मेदारी से इसकी देखभाल करें।

योजना बनाने के तीसरे चरण के तहत वापस प्राप्त किये गये आँकड़ों की अन्तिम जाँच-पड़ताल की जाती है। गॉसप्लान और सरकार के प्रधान सुझावों और संशोधनों को देखते हैं, उसमें जरूरी बदलाव करते हैं और तब योजना तैयार हो जाती है। अन्तिम रूप में इसे हर कहीं मजदूरों और किसानों को भेज दिया जाता है और फिर सारा राष्ट्र अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा इसको पूरा करने में लगा देता है। सामूहिक चीजों के लिए सामूहिक कार्रवाई हकीकत बन जाती है।

उत्पादन के साधनों पर सामूहिक (सार्वजनिक) मालिकाने और केन्द्रीकृत योजना के जरिये समाजवाद में जनता खुद अपनी मंजिल को नियंत्रित करती है। मनुष्य आर्थिक शक्तियों का स्वामी होता है। उत्पादन और उपभोग इस योजना पर आधारित होते हैं जो सवाल करता है कि हमने क्या पाया? हमें किसकी जरूरत है? अपनी जरूरतों के लिए हम जिन चीजों को पाना चाहते हैं उसके लिए हम क्या कर सकते हैं? इस तरह की योजना से हर उस आदमी के लिए उपयोगी काम मुहैय्या कराना सम्भव है जो कि काम चाहता है और इस तरह रोजगार के अधिकार की गारण्टी की जा सकती है। सोवियत संघ के संविधान का अनुच्छेद 118 इसे इन शब्दों में व्यक्त करता है- "सोवियत संघ के नागरिकों के पास काम का अधिकार है जो उनके रोजगार के अधिकार और उनके काम की मात्रा और गुण के अनुसार उनको काम के दाम की गारण्टी करता है।"

"रोजगार का अधिकार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के समाजवादी संगठन, सोवियत समाज की उत्पादक शक्तियों की ठोस वृद्धि, आर्थिक संकट की सम्भावनाओं का खात्मा और बेरोजगारी उन्मूलन के द्वारा सुनिश्चित होता है।"

1929 में आये संकट को अक्सर ही विश्वव्यापी संकट माना जाता है। लेकिन ऐसा नहीं था। उत्पादन को लकवा मार जाने से दुनिया के हर हिस्से में विशाल जनता बेरोजगारी और तकलीफ से प्रभावित हुई, लेकिन एक हिस्से में हालत ऐसी नहीं थी। वह सोवियत संघ की सीमाओं तक पहुँची और वापस लौट गयी।

रूसी जनता समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था की दीवार के पीछे सुरक्षित थी।

केन्द्रीकृत योजना समाजवाद का एक विशिष्ट चरित्र है। इस बात की जरूरत को समझने के लिए कि योजना कैसे काम करती है, हम रूसी मॉडल कि जाँच-पड़ताल कर चुके हैं क्योंकि अभी रूस ही पूरी दुनिया में एक समाजवादी देश है।

हालाँकि हमें यह सोचने की गलती नहीं करनी चाहिए कि किसी अन्य देश में समाजवाद बिलकुल वैसा ही होगा जैसा सोवियत संघ में है। ऐसा नहीं होगा। उदाहरण के लिए एक समाजवादी अमरीका में औद्योगिक केन्द्र स्थापित करने के काम की कोई जल्दबाजी नहीं होगी, क्योंकि हमारे पास पहले से ही दुनिया के सबसे बड़े और सर्वोत्तम उद्योग हैं। सोवियत संघ के मुकाबले हमारा पहला कार्यभार उपभोक्ता सामानों के उत्पादन

पर जोर देना होगा।

ऐसा ही दूसरे देशों के लिए भी है। प्राकृतिक संसाधन भिन्न होते हैं, जलवायु भिन्न होती है, लोगों की पसन्द और नापसन्द में अन्तर होता है, इतिहास और परम्परा में भेद होता है। सोवियत संघ की परिस्थितियाँ मौलिक हैं जो उसकी जरूरतों के हिसाब से एक तरह के समाजवाद को विकसित करती हैं। लेकिन एकदम ऐसा ही दूसरे देशों के लिए नहीं होगा, जिसके कारण उनका समाजवाद दूसरी तरह का होगा।

लेकिन उन सभी देशों के लिए जो समाजवाद को अपनाते हैं, व्यापक रूपरेखा एक समान होगी। उन सभी में उत्पादन के साधनों पर सामूहिक मालिकाना होगा और केन्द्रीकृत योजना होगी।

16. समाजवाद के बारे में सवाल

पूँजीपतियों के बिना क्या हमारी आर्थिक व्यवस्था काम कर सकती है?

इस सवाल का पहला शब्द बदल दें तो आप पाएँगे कि यह एक मानक किस्म का सवाल है जिसे इतिहास के हर दौर में पूछा गया है। चार सौ साल पहले यूरोप में सवाल था-- सामन्ती प्रभुओं के बिना क्या हमारी आर्थिक व्यवस्था कार्य कर सकती है? सौ साल पहले अमरीका में सवाल था-- दास स्वामियों के बिना क्या हमारी आर्थिक व्यवस्था कार्य कर सकती है?

जैसा कि समाज ने पाया कि बिना सामन्ती प्रभुओं और दास स्वामियों के यह हो सकता है, उसी तरह लोग यह भी जान लेंगे कि बिना पूँजीपतियों के भी यह हो सकता है।

पूँजीपतियों में और पूँजी के रूप में उत्पादन के जिन साधनों के वे मालिक हैं इनके बीच हमें फर्क करना चाहिए। निश्चित तौर पर समाज इन उत्पादन के साधनों-- भूमि, खादान, कच्चे माल, मशीन और फैक्ट्रियों के बिना कुछ नहीं कर सकता। ये जरूरी चीजें हैं। रॉबर्ट ब्लैचफोर्ड ने अपनी प्रसिद्ध किताब *मेरी इंग्लैण्ड* में इस फर्क को स्पष्ट तौर पर बताया है-

> यह कहना कि बिना पूँजी के हम काम नहीं कर सकते, उतना ही सच है जितना यह कहना कि बिना दराँती के हम काट नहीं सकते। यह कहना कि बिना पूँजीपति के हम काम नहीं कर सकते, उतना ही झूठ है जितना यह कहना कि हम घास के मैदान को तब तक नहीं काट सकते जब तक सारी दराँतियाँ एक ही आदमी के पास न हों। साथ ही ये उसी तरह झूठ है, जैसे यह कहना कि हम तब तक घास नहीं काट सकते जब तक सारी दराँतियाँ एक आदमी के पास न हों और वह उनके किराये के रूप में फसल का एक तिहाई भाग न ले ले।

जब तक पूँजीपति प्रशासन के जरूरी कार्यों को खुद करता था और जब तक उसकी

आमदनी उसकी खुद की कमाई होती थी, तब तक उसकी जरूरत थी। अब जबकि वह महज शेयर और प्रतिभूतियाँ रखता है उसे बिना कुछ किये ही आय होती है, जबकि काम करने के लिए वह कर्मचारियों को नौकरी पर रखता है, तब उसकी कोई जरूरत नहीं है।

स्वामित्व कभी उपयोगी था पर अब यह परजीविता है। और इसे कौन नकार सकता है कि परजीवियों के बिना हमारी आर्थिक व्यवस्था पहले से कहीं बेहतर ढंग से चलायी जा सकती है।

सार ये है कि हम उस स्थिति में पहुँच चुके हैं जहाँ समाज न केवल बिना पूँजीपतियों के कार्य कर सकता है, बल्कि उसे जरूर करना चाहिए क्योंकि उत्पादन के साधन पर स्वामित्व के रूप में उनकी जो ताकत है, उसका उपयोग वे बेरोजगारी, असुरक्षा और युद्ध को बढ़ावा देने के लिए करते हैं।

क्या लोग मुनाफे के प्रोत्साहन के बगैर काम करेंगे?

इस सवाल का सबसे अच्छा जवाब है कि अभी भी पूँजीवादी समाज में अधिकांश लोग मुनाफे के प्रोत्साहन के बगैर ही काम करते हैं। किसी स्टील प्लांट या कपड़ा मिल या कोयला खदान में काम करने वाले मजदूर से पूछिए कि अपने श्रम का उसे कितना मुनाफा मिलता है और वह आपसे कहेगा और बिलकुल ठीक ही बताएगा कि कुल मिलाकर उसे कुछ भी मुनाफा नहीं मिलता। मुनाफा तो उस प्लांट, मिल या खदान के मालिक के पास चला जाता है। तब मजदूर क्यों काम करता है?

अगर मुनाफा उसका प्रोत्साहन नहीं है तो और क्या है? पूँजीवादी समाज में अधिकांश लोग इसीलिए काम करते है क्योंकि उन्हें इसकी जरूरत है। अगर उन्होंने काम नहीं किया तो वे खा भी नहीं सकते। यह इतनी सीधी बात है। वे मुनाफे के लिए नहीं बल्कि मजदूरी के लिए काम करते हैं। ताकि वे अपने परिवार के लिए भोजन, कपड़ा व घर के अन्य साधन जुटा सकें।

समाजवाद में भी बिलकुल यही अनिवार्यता होगी। लोग अपनी आजीविका कमाने के लिए काम करेंगे।

समाजवाद काम करने के लिए अतिरिक्त प्रोत्साहन देगा जो पूँजीवादी व्यवस्था नहीं दे सकती। यह किसके हक में कहा जाता है कि मजदूर उत्पादन बढ़ाने में अपने आप को झोंक दें? समाजवाद के तहत मेहनत और लगन से काम करने की अपील इस न्यायसंगत जमीन पर खड़े होकर की जाती है कि इससे सम्पूर्ण समाज को लाभ होगा। पूँजीवाद में ऐसा नहीं होता। वहाँ अतिरिक्त प्रयासों का परिणाम सार्वजानिक लाभ नहीं बल्कि निजी मुनाफा होता है। पहला तो समझ में आता है, लेकिन दूसरे का तो कोई मतलब ही नहीं है। पहला तो मजदूर को उसकी क्षमता के मुताबिक जितना सम्भव हो, काम करने को प्रेरित करता है, लेकिन दूसरा उसे मजबूर करता है कि जितना कम से

कम काम करके वह जिन्दा रह सकता है उतना करे। पहले का उद्देश्य उसे आत्मिक सन्तुष्टि देता है और उसकी कल्पनाओं को उत्प्रेरित करता है, दूसरे का उद्देश्य सीधे-साधे इनसानों को प्रलोभन देना है।

अब सवाल उठाया जाता है कि यह उन औसत मजदूरों के लिए तो सच हो सकता है जिनके लिए मुनाफे का प्रोत्साहन अमूमन धोखा है, लेकिन दिमाग वाले लोगों के मामले में ऐसा नहीं है, खोजकर्ता या पूँजीवादी उद्यमी जैसों के लिए मुनाफे का प्रोत्साहन ही सच है।

क्या यह सच है कि अमीर होने का सपना ही वैज्ञानिकों और खोजकर्ताओं को दिन-रात काम करके अपने प्रयोगों को सफलतापूर्ण निष्कर्षों तक पहुँचाने के लिए प्रेरित करता है? साक्ष्य इस सिद्धान्त का समर्थन नहीं करते हैं। लेकिन दूसरी तरफ इस तर्क के समर्थन में विस्तृत साक्ष्य मौजूद हैं कि आविष्कारी प्रतिभा को खोज की खुशी या उसकी सृजनात्मक शक्ति के पूर्ण व मुक्त उपयोग से मिलने वाले आनन्द के अलावा किसी अन्य पुरस्कार की चाह नहीं होती।

इन नामों पर जरा गौर करें-- रेमिंगटन, अंडरवुड, कोरोना, शोलेज। आप इनमें से तीन को टाईपराइटर निर्माताओं के रूप में फौरन पहचान लेते हैं। लेकिन ये चौथा, श्रीमान क्रिस्टोफर शोलेज कौन हैं? वे टाईपराइटर के खोजकर्ता थे। क्या उनकी इस खोज ने उन्हें भी उस सौभाग्य तक पहुँचाया जहाँ इसने रेमिंगटन, अंडरवुड या कोरोना को पहुँचाया? ऐसा नहीं हुआ। उन्होंने अपने अधिकार 12 हजार डॉलर में रेमिंगटन को बेच दिए।

क्या मुनाफा शोलेज का प्रेरणा स्रोत था? उनकी जीवनी लेखक के मुताबिक तो ऐसा नहीं था- “वे बिरले ही पैसों के बारे में सोचते थे, वे तो यहाँ तक कहा करते थे कि उन्हें पैसा कमाना पसन्द नहीं, क्योंकि इसमें बहुत तकलीफ होती है। इसी कारण से वे व्यापारिक मामलों में बहुत कम ध्यान देते थे।”

शोलेज उन हजारों आविष्कारकों और वैज्ञानिकों में से एक थे जो अपने सृजनात्मक कार्यों में हमेशा ही इतने तल्लीन रहते हैं कि वे “बिरले ही पैसों के बारे में सोचते हैं।” इसका मतलब यह नहीं कि ऐसे लोग हैं ही नहीं, जिनका एकमात्र प्रोत्साहन मुनाफा ही है। सोने-चाँदी के लिए लालायित समाज से यही उम्मीद हो सकती है। लेकिन एक ऐसे समाज में इन महान लोगों की भूमिका, जिनके लिए मानवता की सेवा ही प्रोत्साहन था, यह साबित करने के लिए काफी है कि वैज्ञानिक प्रतिभा मुनाफे के प्रोत्साहन के बिना भी काम करेगी।

यदि पहले इस बारे में कोई सन्देह रहा भी हो तो आज इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। वे दिन लद गये जब कोई वैज्ञानिक व्यक्तिगत तौर पर अपना काम किया करता था। अब तो विज्ञान जगत के क्षमतावान लोगों को बड़े कॉरपोरेट नियमित तनख्वाह पर अपनी प्रयोगशालाओं में काम पर रखने लगे हैं। सुरक्षा, सपनों की प्रयोगशाला और सम्मान तो उन्हें उनके दिलचस्प काम के फलस्वरूप मिलता ही है। इन्हीं चीजों से वे

सन्तुष्ट होते हैं और ये उन्हें लगातार मिलते ही रहते हैं, लेकिन उन्हें मुनाफा नहीं मिलता।

कल्पना कीजिये कि वे कोई नयी प्रक्रिया ईजाद करते हैं। क्या इसके परिणामस्वरूप उन्हें मुनाफा प्राप्त होता है? नहीं, उन्हें नहीं मिलता। उन्हें ज्यादा प्रतिष्ठा, पदोन्नति और अधिक तनख्वाह तो मिल सकती है, लेकिन मुनाफा नहीं।

एक समाजवादी समाज ये समझेगा कि अपने खोजकर्ताओं और वैज्ञानिकों को कैसे प्रोत्साहित किया जाय और उनका सम्मान किया जाय। वह उन्हें आर्थिक पुरस्कार और जो उनका यथोचित सम्मान है, दोनों ही देगा। और उन्हें वह चीज भी देगा जो उनके लिए किसी भी अन्य चीज से ज्यादा मूल्यवान है, यानी उनके सृजनात्मक कार्यों के सम्पूर्ण आयामों को जारी रखने का अवसर।

बहुत पहले वास्तव में पूँजीवादी उद्यमों के लिए मुनाफा प्रोत्साहन था लेकिन उद्यमिता के अर्थ में अब वह फीका पड़ चुका है। मुक्त उद्योग से एकाधिकारी उद्योग में आये बदलाव के चलते जिन नये तरह के योग्य प्रशासकों की भर्ती हो रही है, उन्होंने उसके पैर उखाड़ दिये हैं। दुस्साहस, हिम्मत और आक्रामकता जो पुराने तरह के उद्यमियों की विशिष्टता थी, आज के एकाधिकारी उद्योग में उसकी जरूरत नहीं। बड़े कॉरपोरेट जोखिम को न्यूनतम स्तर तक ला चुके हैं। उनका व्यापार मशीनीकृत और योजनाबद्ध है। उनके निर्णय अब सहजबुद्धि पर नहीं, बल्कि सांख्यिकीय शोध पर आधारित होते हैं।

ये कॉरपोरेट अतीत के मालिक उद्यमियों द्वारा नहीं चलाये जाते हैं। कुल मिलाकर ये मालिकों द्वारा नहीं चलाये जाते हैं- मुख्यतः इनका प्रबंधन भाड़े के कार्यपालकों द्वारा होता है जो मुनाफे के लिए नहीं, बल्कि तनख्वाह के लिए काम करते हैं।

उनकी तनख्वाह बहुत ज्यादा या कम हो सकती है। उसमें बड़ा बोनस भी शामिल हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। इसके साथ ही उसमें अन्य पुरस्कार, जैसे - प्रशंसा, प्रतिष्ठा, ताकत, एक अच्छी नौकरी करने की खुशी भी शामिल हो सकती है, लेकिन जो लोग अमरीकी व्यापार का प्रबंधन कर रहे हैं, उनमें से ज्यादातर लोगों के लिए मुनाफे का प्रोत्साहन बहुत लम्बे समय से निस्तेज पड़ चुका है।

क्या लोग मुनाफे के बजाय किसी और प्रोत्साहन से काम करेंगे? अंदाजा लगाने की जरूरत नहीं है। हम जानते हैं कि लोग ऐसा करते हैं।

क्या समाजवादी समाज में सबको बराबर भुगतान किया जाता है?

नहीं, ऐसा नहीं होता। कुशल मजदूर, अकुशल मजदूर से ज्यादा पाते हैं। प्रबंधक, मजदूर से ज्यादा पाता है। बड़ा संगीतकार औसत संगीतकार से ज्यादा पाता है। एक किसान जो 400 बुसेल गेहूँ पैदा करता है वह 300 बुसेल गेहूँ पैदा करने वाले से ज्यादा पाता है, 8 टन कोयला खोदने वाला खदान मजदूर 6 टन खोदने वाले से ज्यादा पाता है

और इसी तरह अन्य भी। लोगों को उनके काम की गुणवत्ता और मात्रा के अनुसार भुगतान किया जाता है।

यहाँ तक कि समाजवादी समाज में जिस व्यक्ति को सबसे ज्यादा तनख्वाह मिलती है, वह केवल तब तक ही उसे प्राप्त कर सकता है जब तक वह काम करके उसे कमा सकता है। उत्पादन के साधन खरीदने के जरिये वह अपनी आय को बिना कमायी हुई आय में नहीं बदल सकता जिससे कि वह दूसरे के श्रम पर जिन्दा रहे। वह इस सर्वोत्तम कारण से उत्पादन के साधनों को खरीद ही नहीं सकता कि समाजवादी समाज में उत्पादन के साधन जनता की सम्पत्ति होते हैं और बेचने के लिए नहीं होते। कड़ी मेहनत और बेहतर काम के जरिये जो ज्यादा भुगतान पाता है, उसे यह अधिकार है कि वह कम आय वाले की तुलना में ज्यादा बेहतर तरीके से जिये। लेकिन उसकी ऊँची आय उसे यह अधिकार नहीं देती कि वह किसी दूसरे का शोषण करे।

हालाँकि समाजवादी समाज में आय में असमानता होती है, लेकिन वहाँ अवसरों की समानता होती है। हालाँकि कुशल मजदूरों की ज्यादा आमदनी होती है, लेकिन अकुशल मजदूरों के पास कुशल मजदूर बनने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण और अनुभव प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध होती है। हालाँकि प्रशासक, इंजीनियर, लेखक, कलाकार ऊँचा भुगतान पाते हैं, लेकिन सीखने की क्षमता के अनुपात में सभी के लिए मुफ्त शिक्षा है जो इन व्यवसायों में जाने के लिए व्यापक रास्ते खोलती है। और समाजवादी समाज में "सभी" का मतलब ठीक यही है, इसका मतलब यह कतई नहीं कि वे सभी जो शुल्क अदा कर सकते हैं या वे सभी जो नीग्रो या यहूदी नहीं हैं।

समाजवाद और साम्यवाद में क्या फर्क है?

समाजवाद और साम्यवाद में यह समानता है कि दोनों ही उत्पादन व्यवस्थाओं को उत्पादन के साधनों पर सामूहिक मालिकाने और केन्द्रीकृत नियोजन के आधार पर उपयोग में लाया जाता है। समाजवाद सीधे पूँजीवाद से विकसित होता है, यह नए समाज की पहली अवस्था है। साम्यवाद उसके आगे का विकास या समाजवाद की "उच्च अवस्था" है।

हर एक से उसकी क्षमता के अनुसार, हर एक को उसके *कार्य के* अनुसार (समाजवाद)

हर एक से उसकी क्षमता के अनुसार हर एक को उसकी *जरूरत के* अनुसार (साम्यवाद)

कार्य के अनुसार वितरण का समाजवादी सिद्धान्त यानी किये गये कार्य की गुणवत्ता और मात्रा के अनुसार भुगतान तत्काल ही सम्भव और व्यवहारिक है। दूसरी तरफ आवश्यकतानुसार वितरण का साम्यवादी सिद्धान्त जो न तत्काल सम्भव है और न ही व्यवहारिक। यह एक अन्तिम लक्ष्य है।

निश्चिय ही, इसे हासिल कर सकने से पहले, उत्पादन का अकल्पित ऊँचाइयों तक पहुँचना जरूरी है सभी की जरूरतों को तुष्ट करने के लिए हर चीज की बहुत ज्यादा उपलब्धता जरूरी है। इसके साथ ही कार्य करने को लेकर लोगों के व्यवहार में बदलाव आना भी जरूरी है। इसके बजाय कि उन्हें काम *करना ही* है, लोग इसलिए काम करेंगे क्योंकि वे काम *करना चाहते* हैं, समाज के प्रति जिम्मेदारी की भावना से भी और इसलिए भी कि अपने जीवन में वे काम करने की जरूरत महसूस करते हैं।

प्रचुर उत्पादन और लोगों के मानसिक और अध्यात्मिक नजरिये में बदलाव के लिए समाजवाद उत्पादक शक्तियों के विकास की प्रक्रिया का प्रथम चरण है। यह पूँजीवाद से साम्यवाद में संक्रमण का अनिवार्य चरण है।

समाजवाद और साम्यवाद के बीच भेद से यह नहीं मान लेना चाहिए कि दुनियाभर की जो राजनीतिक पार्टियाँ अपने आप को समाजवादी कहती हैं वे समाजवाद की वकालत करती हैं और जो खुद को कम्युनिस्ट कहती हैं वे साम्यवाद की पक्षधर हैं। मामला ऐसा नहीं है। चूँकि तत्काल पूँजीवाद की जगह लेने वाला समाजवाद ही हो सकता है, इसलिए समाजवादी पार्टियों की तरह ही कम्युनिस्ट पार्टियों का अपना लक्ष्य भी समाजवाद की स्थापना करना ही होता है।

तब क्या समाजवादी और कम्युनिस्ट पार्टियों के बीच कोई अन्तर नहीं है? हाँ उनमें फर्क है।

कम्युनिस्ट इस बात पर यकीन करते हैं कि जितनी जल्दी मेहनतकश वर्ग और उसके सहयोगी ऐसा करने की स्थिति में होते हैं, उन्हें राज्य के बुनियादी चरित्र में बदलाव कर देना चाहिए। उन्हें मजदूर वर्ग के ऊपर पूँजीपति वर्ग की तानाशाही को हटाकर पूँजीपति वर्ग के ऊपर मजदूरों की तानाशाही स्थापित करनी चाहिए या यह उस प्रक्रिया का पहला चरण है जिसके द्वारा एक वर्ग के तौर पर (लेकिन व्यक्तिगत रूप से नहीं) पूँजीपतियों का अस्तित्व खत्म हो जाता है। समाजवाद का निर्माण सिर्फ सरकार की पुरानी पूँजीवादी मशीनरी हासिल करके और उसके उपयोग से नहीं किया जा सकता। मजदूरों को पुरानी राज्य मशीनरी को ध्वस्त कर अपनी खुद की नयी राज्य मशीनरी का निर्माण करना चाहिए। मजदूरों के राज्य को पुराने शासक वर्ग को प्रतिक्रान्ति संगठित करने का कोई मौका नहीं देना चाहिए और जब भी पूँजीवादी प्रतिरोध उठे उसे दबाने के लिए अपनी सैन्य क्षमता का उपयोग करना चाहिए।

दूसरी तरफ सभी समाजवादियों का विश्वास है कि राज्य के बुनियादी चरित्र में बदलाव किये बिना ही पूँजीवाद से समाजवाद में संक्रमण सम्भव है। वे इस विचार पर इसलिए कायम हैं, क्योंकि वे यह नहीं सोचते कि पूँजीवादी राज्य सारतः पूँजीपति वर्ग की तानाशाही की ही एक संस्था है। इसके बजाय वे उसे मशीनरी का एक ऐसा श्रेष्ठ पुर्जा समझते हैं जिसका उपयोग हर उस वर्ग के हित में किया जा सकता है जिसका उस पर नियंत्रण है। फिर इसकी कोई जरूरत भी नहीं है कि मजदूर वर्ग के हाथ में सत्ता आये

और जिससे वह पुरानी पूँजीवादी राज्य मशीनरी को ध्वस्त कर अपनी खुद की मशीनरी को स्थापित करे- यानी समाजवाद का निर्माण पूँजीवादी राज्य के जनवादी रूपों के जरिये कदम-ब-कदम हो सकता है।

सोवियत संघ के प्रति इन दोनों तरह की पार्टियों का रवैया सीधे इस समस्या के प्रति उनके नजरिये से ही पैदा होता है। सामान्य तौर पर कहें तो कम्युनिस्ट पार्टियाँ सोवियत संघ की प्रशंसक हैं, जबकि समाजवादी पार्टियाँ विभिन्न तरह से उसकी भर्त्सना करती हैं। कम्युनिस्टों के लिए सोवियत संघ समाजवाद में यकीन करने वाले सभी सच्चे लोगों की प्रशंसा के योग्य है क्योंकि वह समाजवादी स्वप्न को हकीकत में बदल चुका है। समाजवादियों के लिए सोवियत संघ केवल निन्दा का ही हकदार है क्योंकि उसने कुल मिलाकर समाजवाद का निर्माण नहीं किया, कम-से-कम उस समाजवाद का तो नहीं ही जिसका उन्होंने सपना देखा था।

क्या समाजवाद का अर्थ लोगों की निजी सम्पत्ति छीन लेना है?

लोगों से उनकी निजी सम्पत्ति छीनने के बजाय समाजवादी चाहते हैं कि लोगों के पास इतनी निजी सम्पत्ति हो जितनी पहले कभी नहीं थी।

यहाँ दो तरह की निजी सम्पत्ति हैं। एक सम्पत्ति तो वह है जो अपनी प्रकृति में ही निजी है, जैसे उपभोक्ता सामानों का उपयोग निजी आनन्द के लिए होता है। दूसरे तरह की निजी सम्पत्ति भी है जो अपनी प्रकृति में ही व्यक्तिगत नहीं है, जैसे उत्पादन के साधनों की सम्पत्ति। इस तरह की सम्पत्ति का उपयोग निजी आनन्द के लिए नहीं बल्कि उन उपभोक्ता सामानों के उत्पादन के लिए होता है जो निजी आनन्द के लिए होते हैं।

समाजवाद का अर्थ इस पहले तरह की निजी सम्पत्ति को छीनना नहीं होता है, जैसे आपके सूट के कपड़े। इसका अर्थ होता है दूसरे तरह की निजी सम्पत्ति को छीन लेना, जैसे- सूट का कपड़ा बनाने वाली आपकी फैक्ट्री। इसका अर्थ होता है थोड़े से लोगों के हाथ से उत्पादन के साधनों के निजी मालिकाने को छीन लेना ताकि बहुत सारे उपभोग के साधनों पर ज्यादातर लोगों का निजी मालिकाना हो। मजदूरों के द्वारा अर्जित जो सम्पत्ति मुनाफे के रूप में उनसे ले ली जाती है, समाजवाद के अन्तर्गत वह उनके पास ही रहेगी जिससे वे और ज्यादा निजी सम्पत्ति खरीदें, सूट के और ज्यादा कपड़े खरीदें और ज्यादा फर्नीचर और ज्यादा खाना, सिनेमा के और ज्यादा टिकट खरीदें।

उपयोग और आनन्द के लिए ज्यादा निजी सम्पत्ति। उत्पीड़न और शोषण के लिए कोई निजी सम्पत्ति नहीं। यही है समाजवाद।

क्या समाजवादी वर्ग युद्ध के उपदेशक नहीं है?

जब तब समाज विरोधी हितों वाले वर्गों में विभाजित होता है, तब तक वर्ग युद्ध मौजूद होता है। पूँजीवाद अपनी प्रकृति से ही इस विभाजन को पैदा करता है। जितनी जल्दी समाज का विरोधी वर्गों में बँटवारा खत्म हो जायेगा उतनी ही जल्दी वर्ग युद्ध भी खत्म हो जायेगा। समाजवाद अपनी प्रकृति से ही वर्गविहीन समाज का निर्माण करता है।

समाजवादी वर्ग युद्ध का "उपदेश" नहीं देते, वे तो उस वर्ग युद्ध की व्याख्या करते हैं जो पहले से ही मौजूद है। वे मजदूर वर्ग का आह्वान करते हैं कि एक ऐसे समाज को जिसका वर्गों में ही बँटा होना अनिवार्य है, उसे बदलकर एक ऐसा समाज लाने में मदद करें जहाँ इस तरह का वर्ग विभाजन सम्भव ही न हो। वे वैश्विक भाईचारे को प्रेरित करते हैं जो पूँजीवाद के अन्तर्गत महज एक सपना ही हो सकता है और समाजवाद में ही वह एक यथार्थ में रूपान्तरित होता है।

समाजवादी उपदेश ईसाइयत के, मानवीय भाईचारे के ही धर्मोपदेश हैं। उनकी शिक्षाओं के बारे में *इनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका* का कहना है कि "समाजवाद की नैतिकता यदि ईसाइयत की नैतिकता के सामान नहीं भी है तो भी वह उससे बहुत मिलती-जुलती है।"

क्या अमरीका के लोग उनसे बेहतर नहीं हैं जो सोवियत संघ में रहते हैं और क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि पूँजीवाद समाजवाद से बेहतर है?

अमरीका में पूँजीवाद 150 साल पुराना है जबकि सोवियत संघ में समाजवाद को महज 50 साल हुए हैं। इस तरह दोनों के बीच तुलना करना उसी तरह से गलत है जैसे कि एक वयस्क आदमी की क्षमता की तुलना एक ऐसे बच्चे से करना जिसने अभी बस चलना शुरू ही किया हो।

इसके अलावा, सोवियत संघ एक पिछड़ा औद्योगिक देश था, अपने जन्म से ही इसे युद्ध और अकाल के कारण हुए विध्वंस को झेलना पड़ा था। उसने अभी विकास करना शुरू ही किया था कि द्वितीय विश्व युद्ध में दूसरी बार उसे उजड़ना पड़ा। यकीनन समाजवाद और पूँजीवाद की सापेक्षिक योग्यता की तुलना दुनिया के पूँजीवादी देशों में सबसे धनी और युद्ध के विध्वंस से सबसे कम प्रभावित देश को चुनकर सिद्ध नहीं होती।

सबसे अच्छी तुलना तो जारशाही रूस के पूँजीवाद और सोवियत संघ के समाजवाद की तुलना ही होगी। इसमें प्रत्येक निष्पक्ष पर्यवेक्षक सहमत होता है कि समाजवाद उससे हर तरह से श्रेष्ठ है।

इसी तरह पूँजीवादी अमरीका और समाजवादी अमरीका की तुलना करना सर्वोत्तम होगा।

किसी भी अन्य देश में समाजवाद के लिए भौतिक परिस्थितियाँ इतनी ज्यादा तैयार नहीं हैं जितनी अमरीका में। यहाँ जितनी तेजी से तथा इतनी कम अफरा-तफरी और

परेशानी के पूँजीवादी असुरक्षा, चाह और युद्ध को समाजवादी सुरक्षा, प्रचुरता और शान्ति में बदला जा सकता है, दूसरे देशों में उतना आसान नहीं। दूसरे देशों में समाजवाद जहाँ औद्योगिक प्लांट तथा वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान हासिल करने के लिए बड़ी कुर्बानियों की जरूरत पड़ेगी वहीं हमारे यहाँ यह सब तैयार खड़ा है। दूसरे देशों में, जैसे की सोवियत संघ में ही लोगों को कुछ समय के लिए प्रचुर उत्पादन क्षमता का विकास किये बिना ही आगे बढ़ना पढ़ा। लेकिन संयुक्त राज्य में उत्पादक शक्ति तैयार हैं, उन्हें केवल मुक्त करने की जरूरत है, जो पूँजीवाद नहीं कर सकता लेकिन समाजवाद कर सकता है।

क्या समाजवाद गैर-अमरीकी नहीं है?

समाजवाद को गैर-अमरीकी होने के लिए जरूरी है कि उसका लक्ष्य अमरीकी लोगों की भावना और परम्परा के अनुरूप न हो। क्या ऐसा है? सामाजिक न्याय, अवसरों की समानता, आर्थिक सुरक्षा और शान्ति इन सभी अमरीकी सिद्धान्तों का प्रतिपादन स्वतंत्रता की घोषणा और संविधान में किया गया है। समाजवाद के इन उद्देश्यों से और अधिक अमरीकी क्या चीज हो सकती है? क्या हमारे महान राजनेताओं ने हमेशा ही इन आदर्शों की घोषणा नहीं की है?

कार्ल मार्क्स का समाजवाद एक विज्ञान है। दूसरे तमाम विज्ञानों की तरह ही यह सार्वभौमिक है और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर इसने दुनिया के प्रत्येक कोने और यहाँ तक कि अमरीका के भी लाखों लोगों की सोच को प्रभावित किया है। लेकिन इस बात का परीक्षण कि कोई विचार अमरीकी या गैर अमरीकी है, इससे नहीं होता कि वह कहाँ से आया है, बल्कि इससे होता है कि क्या वह अमरीका के लिए व्यवहारिक है।

क्या समाजवाद इसलिए असम्भव नहीं है कि "आप मानव प्रकृति को बदल नहीं सकते।"?

जो लोग इस तरह से तर्क करते हैं कि "आप मानव प्रकृति को नहीं बदल सकते" वे यह मानकर चलने की गलती करते हैं कि चूँकि मनुष्य पूँजीवादी समाज में एक खास तरह का व्यवहार करता है, इसलिए मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी है और इससे अलग कोई व्यवहार सम्भव ही नहीं हैं। वे देखते हैं कि पूँजीवादी समाज में इनसान लोभी होता है, लालच उसकी चालक शक्ति में से एक है, वह किसी भी तरह, सीधे या टेढ़े रास्ते से आगे बढ़ना चाहता है। इस तरह वे इससे निष्कर्ष निकलते हैं कि यह सभी मानवों का "प्राकृतिक" व्यवहार है और ऐसे समाज का निर्माण करना असम्भव है जो निजी मुनाफा कमाने के प्रतियोगी संघर्ष को छोड़कर किसी अन्य चीज पर आधारित हो।

हालाँकि, मानवविज्ञानशास्त्रियों का कहना है कि यह सब बकवास है। इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने बताया कि अब ऐसा समाज भी अस्तित्व में है जहाँ मानव व्यवहार

उस तरह का नहीं है, जैसा कि वह पूँजीवाद के अन्तर्गत होता है। इतिहासकार भी उनके साथ जुड़ते जा रहे हैं। उनका भी कहना है कि यह सब बकवास है। इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने बताया कि गुलाम समाज और सामन्तवाद में भी मानव व्यवहार वैसा नहीं था जैसा की पूँजीवाद के अन्तर्गत है।

यह सम्भावित सत्य है कि सभी मानव आत्म-प्रसंस्करण और प्रजनन की नैसर्गिक प्रवृति के साथ जन्म लेते हैं। भोजन, कपड़ा, घर और लैंगिक प्रेम उनकी बुनियादी जरूरत है। इन सबको "मानव प्रकृति" स्वीकार किया जा सकता है। लेकिन इन इच्छाओं की सन्तुष्टि के लिए वह जिन रास्तों से गुजरता है यह जरूरी नहीं कि वे वही रास्ते हों जो पूँजीवादी समाज में सर्वमान्य हैं। इसके बजाय यह इस पर भी निर्भर करता है कि किसी विशेष संस्कृति में पैदा होने के चलते उनके लिए कौन सा रास्ता सुलभ है। यदि मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ दूसरे को तबाह करके ही पूरी की जा सकती हैं तब हम मान सकते हैं कि मनुष्य एक-दूसरे को तबाह कर देंगे। लेकिन यदि मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं को सहकार के जरिये बेहतर तरीके से पूरा किया जा सकता है तो यह सोचना ज्यादा अच्छा होगा कि मनुष्य सहकार करेंगे।

इनसान के अपने हित ज्यादा और बेहतर भोजन, कपड़ा और आवास की इच्छा में उसकी सुरक्षा की भावना के रूप में प्रकट होते हैं। जब वे जान जाते हैं कि उनकी जरूरतें पूँजीवाद में पूरी नहीं हो सकती जबकि वे समाजवाद में ही पूरी हो सकती हैं, तो वे बदलाव करेंगे।

17. स्वतंत्रता

ज्यादातर अमरीकियों के लिए स्वतंत्रता का अर्थ है राज्य के हस्तक्षेप के बिना, जैसे उन्हें पसन्द है, वैसा करने और कहने का अधिकार मिलना। वे सरकार और उसे चलाने वालों की आलोचना करने के अपने अधिकार में विशेष गर्व महसूस करते हैं।

ये स्वतंत्रताएँ जिस पर अमरीकियों को ठीक ही गर्व है, संविधान के पहले दस संशोधनों में अधिकारों के कानून (बिल ऑफ राइट) में नहीं मिली हैं। ये विशेष अधिकार हैं-- बोलने की आजादी, निरंकुश कैद से आजादी, आपराधिक अभियोग में बिना न्यायिक मुकदमे के जेल भेजे जाने से आजादी।

इन स्वतंत्रताओं के महत्त्व को अतिरंजित नहीं किया जा सकता। ये बहुमूल्य स्वतंत्रताएँ हैं। अपनी स्थिति में सुधार करने के लिए यह मजदूर वर्ग के संघर्ष का मूल हथियार रही हैं। अमरीका को महान बनाने में इसने बहुत मदद की है। इनकी मौजूदगी ने दूसरी धरती के अप्रवासियों के लिए अमरीका को बहुत आकर्षक बनाया है। इसने राष्ट्र निर्माण में मदद दी है। अपने भाई जोसेफ का पत्र मिलने के बाद जो अभी-अभी मिली स्वतंत्रता के आनन्द में मगन था, माइकल कब तक पुराने देश में रह पाता? "माइकल, यह एक शानदार देश है, जो लिखना चाहे लिख सकते हैं, जो आपके मन में है वह कह

सकते हैं और कोई आपको गिरफ्तार नहीं करेगा।"

निसन्देह ज्यादातर दूसरे देशों के लोगों को प्राप्त स्वतंत्रता की तुलना में अमरीकी इन स्वतंत्रताओं का ज्यादा आनन्द ले चुके हैं। फिर भी यह दावा करना बेवकूफी ही होगा कि अधिकारों की जो गारण्टी हमें संविधान में मिली है वह हमेशा मिलती ही हो। किताबों में जो हमारी स्वतंत्रताएँ हैं, वे हमारी असल जिन्दगी में हमेशा नहीं होती हैं। इस तरह अमरीका-विरोधी गतिविधियों के लिए हॉउस कमिटी (संवैधानिक समिति) नागरिकों को बदनाम करके और उन पर अभियोग लगाकर बिल ऑफ राइट (अधिकारों का कानून) की घोर उपेक्षा करती है। सरकारी कर्मचारियों को राय जाहिर करने और संगठन बनाने की स्वतंत्रता के अधिकार को राष्ट्रपति के आदेश पर चुनौती दी जाती है और स्वामिभक्ति के एक नये प्रकार की रूपरेखा तैयार की जाती है जो पारम्परिक अमरीकी अवधारणा से बहुत दूर है। संघीय जाँच ब्यूरो (एफबीआई) एक राजनीतिक पुलिस में तब्दील हो गया है जिसके पास लाखों अमरीकियों के विचारों और गतिविधियों की अन्तहीन फाइलें और खुफिया जानकारियाँ हैं। एफबीआई जिस तरह की जानकारियों (सूचनाओं) पर ध्यान देता है वे नयी "स्वामी भक्ति" के लिए प्रासंगिक सूचनाएँ हैं, एफबीआई की 1948 की एक रिपोर्ट की यह टिप्पणी इस ओर इशारा करती है, "वह इस तरह का व्यक्ति है कि अपनी नीग्रो नौकरानी को सामने के दरवाजे से आने-जाने देता है।"

तथ्य इस ओर इशारा करते हैं कि हम अपने विचारों में इतने आत्मतुष्ट भी हो सकते हैं कि जिन स्वतंत्रताओं की प्रज्वलित घोषणाओं का हम आदर करते हैं और जो उनकी वास्तविकता है दोनों एक समान हैं, न ही उनमें यकीन करने का लगातार वचन देना या उनके प्रति हमारे स्नेह को धर्मनिष्ठा के साथ बार-बार दोहराना ही उन्हें सत्य बनाता है।

इसके अतिरिक्त, स्वतंत्रता का प्रभावी तरीके से खंडन किया जा सकता है या उसे दबाया जा सकता है, यहाँ तक कि तब भी जब राज्यसत्ता की ओर से कोई जोर-जबरदस्ती न हो। उदाहरण के लिए इस सूक्ति को देखें- दक्षिण में नीग्रो, गोरों के सामान नागरिक अधिकारों का आनन्द नहीं उठाते और देश में हर कहीं उनके खिलाफ एक या दूसरे रूप में भेदभाव होता है। यहूदियों को प्रतिबन्धों के द्वारा रोका जाता है जो उनको, कॉलेज, होटलों और नौकरियों में जाने के समान अवसरों को उपलब्ध नहीं कराता। अगर कोई पटकथा लेखक अपने निजी विचारों की हिफाजत करने के अपने संवैधानिक अधिकार पर कायम रहता है तो अपनी आजीविका कमाने से वंचित किया जाता है। टीकाकारों के कार्यक्रमों को यह मानकर प्रसारित नहीं किया जाता कि वे अति "उदार" हैं।

क्या स्वतंत्रता की डींग मारने वाला हमारा अहंकार यह सोचता और कहता है कि हमारी खुशी उतनी ही वास्तविक है जितना की हम उस पर यकीन करना चाहते हैं? क्या हम सच में राजनीतिक और आर्थिक असहमतियों को झेलते हैं? सामान्य समय में तो यह सही है कि हम उदार या अतिवादियों को जेल में भी थप्पड़ नहीं जड़ते। लेकिन उदाहरण के लिए, भारी तनाव के समय हम क्या करते हैं? क्या हमेशा यही नहीं होता

कि रोजगार, ताकत और प्रतिष्ठा हमेशा उनको ही मिलती है जो "विश्वस्त" या "निरापद" होते हैं? उदाहरण के लिए शिक्षा के क्षेत्र को लेते हैं। हम अपने कॉलेजों में अकादमिक स्वतंत्रता के लिए खुद पर गर्व करते हैं। संयुक्त राज्य के सैकड़ों कॉलेजों में हजारों प्रोफेसर हैं। सामान्य समय में उनको इस बात की कम या ज्यादा स्वतंत्रता है कि वे जो सोचते हैं वह पढ़ाएँ। लेकिन क्या पहले पहल उन्हें इसलिए नहीं चुना गया था कि जो वे सोचते थे वह उस सोच से बहुत ज्यादा मेल खाता था जो कॉलेज के प्रमुख की सोच थी? अकादमिक तौर से योग्य होने के बावजूद आज तक अर्थशास्त्र के अध्यापक के पद पर कितने समाजवादियों की कॉलेज में नियुक्ति हो पायी?

प्रेस की स्वतंत्रता एक आदर्श और आकर्षक वाक्य है। अमरीकियों को यह सुनना पसन्द आता है। हम यह सोचते हैं कि इसका अर्थ सार्वजानिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है। शायद कभी ऐसा हुआ हो, लेकिन अब ऐसा नहीं होता। प्रेस स्वतंत्रता आयोग के प्रमुख और शिकागो विश्वविद्यालय के औपचारिक कुलपति डॉ. राबर्ट हचिन्स ने 1947 में एक रिपोर्ट में कहा था कि *"सरकार के विरुद्ध सुरक्षा ही अब इस बात की गारण्टी के लिए पर्याप्त नहीं है कि एक आदमी जिसके पास कहने को कुछ है उसे वह कहने का मौका मिलेगा।* प्रेस के मालिक और प्रबंधक ही यह तय करते हैं कि कौन से व्यक्ति, कौन से तथ्य, तथ्यों का कौन सा बयान और कौन से विचार जनता तक पहुँचेंगे।" (जोर लेखक का)

अमरीका में हम सोचते हैं कि "सरकार के बरक्स सुरक्षा" स्वतंत्रता के सारे सवाल का केन्द्र है। हम क्या कहें और करें इस पर कानूनी ताकत से हुक्म चलाकर या नियंत्रण कर इसकी हद तय की जाती है। लेकिन जैसा की आयोग की रिपोर्ट दिखाती है कि रोकथाम की गैर-मौजूदगी ही अपने आप में काफी है- "एक आदमी जिसके पास कहने को कुछ है उसे वह कहने का मौका मिलेगा इसकी गारण्टी" यह नहीं करता।

समाजवादियों का तर्क है कि यही सारे सवाल का केन्द्र है। हालाँकि उनके लिए यह बहुत मूल्यवान है पर जरूरी नहीं कि जोर-जबरदस्ती का न होना ही स्वतंत्रता को सुनिश्चित करता है। यही तथ्य कि अगर कोई कानून आपको कुछ करने से नहीं रोकता तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि आप उसे करने की स्थिति में हैं। यह आपका अधिकार है कि आप अपने नजदीकी हवाई अड्डे पर जाकर न्यू ऑरलियन्स या हॉलीवुड या न्यूयॉर्क का जहाज पकड़ लें, लेकिन आपके पास अगर टिकट खरीदने का पैसा न हो तो आप ऐसा करने के लिए सच में स्वतंत्र नहीं हैं। एक ऐसा अधिकार होने का क्या उपयोग है जिसका इस्तेमाल करने लायक आप हैं ही नहीं?

स्वतंत्रता के मायने तब सिर्फ रोकथाम के अभाव से बहुत ज्यादा हो जाते हैं। इसका एक सकारात्मक पहलू है, जिसका बहुसंख्य जनता के लिए ज्यादा गम्भीर अर्थ है। स्वतंत्रता का अर्थ भरपूर जिन्दगी जीना यानी पर्याप्त भोजन, कपड़ा, मकान और साथ ही सोचने-विचारने के प्रभावशाली मौकों, व्यक्तित्व विकास व निजता की रक्षा से सम्बन्धित

अपने शरीर की जरूरतों को पूरा करने की आर्थिक क्षमता है।

स्वतंत्रता की यह अवधारणा उन्हें सम्भवतः आश्चर्य जैसी लगती हैं जिनके पास अपनी इच्छाओं को पूरा करने और अपनी क्षमताएँ विकसित करने के साधन हमेशा से ही मौजूद रहे हैं। *उनके लिए* स्वतंत्रता का माप केवल इसी रूप में होता है कि उनके अधिकारों में कोई हस्तक्षेप तो नहीं। हालाँकि मानवजाति के लिए स्वतंत्रता की माप अधिकारों के रूप में कम तथा श्रम और रोटी, फुरसत और सुरक्षा के रूप में ज्यादा है। इस व्यापक अवधारणा की प्रमाणिकता को स्थापित करने के लिए हमारे पास पूछने के लिए चंद सवाल हैं- एक बेरोजगार जो भूखा है, क्या वह स्वतंत्र है? एक अनपढ़ और अशिक्षित व्यक्ति जो किताबों और संस्कृति की दुनिया से कटा हुआ है, क्या वह स्वतंत्र है? एक आदमी जो साल में 52 हफ्ते की नौकरी करता है और आराम के लिए, छुट्टियाँ या घूमने के लिए उसे कभी भी कोई दिन नहीं मिलता, क्या वह स्वतंत्र है? एक आदमी जो लगातार गुजर-बसर की परेशानी से घिरा रहता है, क्या वह स्वतंत्र है? एक आदमी जो हमेशा अपनी नौकरी छूट जाने के भय में जीता है, क्या वह स्वतंत्र है? एक प्रतिभाशाली व्यक्ति जो पढ़ाई-लिखाई करके अपनी प्रतिभा को और निखार सकता है, वह अपनी पढ़ाई-लिखाई का खर्चा उठाने में असमर्थ है, क्या वह स्वतंत्र है?

स्वतंत्रता का आनन्द भोगने की क्षमता इसके व्यापक अर्थों में, यानी प्रचुरता, सुरक्षा और फुरसत, सिर्फ अमीरों में है। गरीब स्वतंत्र नहीं हैं और जैसा कि हम देख ही चुके हैं कि पूंजीवाद के अन्तर्गत वे अपनी स्वतंत्रता हासिल कर भी नहीं सकते। जैसा कि कोर्लिस लेमोन्ट सटीक रूप से कहते हैं कि समाजवाद के लिए संघर्ष "स्वतंत्रता के बँटवारे" का संघर्ष है।

मेहनतकश वर्ग के लिए स्वतंत्रता की राह स्पष्ट रूप से चिन्हित है- उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने की जगह सामूहिक मालिकाने की स्थापना, पूँजीवाद की जगह समाजवाद की स्थापना। जैसा कि जॉन स्ट्रैची बताते हैं- "पूँजीपतियों की बेदखली की शुरुआती कार्रवाई ही एक झटके में पहले की तुलना में इतनी आजादी लाती है, जितनी पूँजीपतियों को छोड़कर पूँजीवाद के अन्दर किसी को कभी नहीं हो सकती है। न ही संविधान, न ही अधिकारों का कानून (बिल ऑफ राइट्स), न ही गणतंत्र और न ही संवैधानिक राजतंत्र किसी इनसान को तब तक स्वतंत्र बना सकता जब तक उसकी जिन्दगी उस छोटे से वर्ग की दया पर निर्भर है जिनका जिन्दगी के साधनों पर नियंत्रण है। ये स्वतंत्रताएँ जिनकी परछाई भर ही ब्रिटेन और अमरीका के मजदूरों के पास है, समाजवाद में ही यह मूर्त हो सकती है। एक समाजवादी समाज में मजदूर न केवल सैद्धांतिक रूप में बल्कि अपने दैनिक जीवन में भी इन स्वतंत्रताओं का उपयोग करने के व्यवहारिक अवसर पाते हैं। वे न सिर्फ काम करने के, बल्कि जीने के भी योग्य होते हैं। समाजवाद के अन्तर्गत काम करना स्वतंत्रता और अच्छी जिन्दगी जीने का साधन बन जाता है। पूँजीवाद के अन्तर्गत मजदूरों की जिन्दगी उनसे काम की अधिकतम मात्रा को

निचोड़ लेने के आवश्यक साधन के बतौर सुरक्षित होती है।"

समाजवाद बहुसंख्य जनता के लिए स्वतंत्रता की एक शर्त है जबकि यह पूँजीपति वर्ग की उस स्वतंत्रता को बाधित करता है जिसका वे आनन्द उठाते रहे हैं। इसीलिए पूँजीपतियों के इस घृणित विरोध का कि समाजवाद और स्वतंत्रता का कोई सामंजस्य नहीं है, हम इस सवाल से स्वागत करेंगे कि- किसकी स्वतंत्रता? यह सच है कि समाजवाद उस तरह की स्वतंत्रता से मेल नहीं खाता जिसके वे आदी हो चुके हैं। यह अपने कल्याण को सबके कल्याण से ऊपर रखने की उनकी स्वतंत्रता को खत्म करता है। यह दूसरों का शोषण करने की उनकी स्वतंत्रता का खात्मा करता है। यह बिना काम किये जीने की उनकी स्वतंत्रता का खात्मा करता है।

लेकिन बाकी बचे हम सब लोगों के लिए समाजवाद का अर्थ कम नहीं, बल्कि ज्यादा स्वतंत्रता होगा। ऐसा न हो कि हम पूँजीपतियों की स्वतंत्रता घटने से बहुत ज्यादा चिन्तित हों। हमें यह याद रखना चाहिए कि जिनके पास बहुत कम स्वतंत्रता है, उनके लिए ज्यादा स्वतंत्रता उनकी कीमत पर ही जीती जा सकती है जिनके पास यह बहुत ज्यादा है। अब्राहम लिंकन के शब्दों में "हम सब स्वतंत्रता की घोषणा करते हैं, लेकिन इस शब्द का उपयोग करते हुए हम सभी के लिए इसका समान अर्थ नहीं होता। कुछ के लिए स्वतंत्रता शब्द का अर्थ हो सकता है कि प्रत्येक अपने और अपने श्रम के उत्पाद के साथ जो चाहे वह करें जबकि दूसरों के लिए इसी शब्द का अर्थ यह भी हो सकता है कि वे दूसरे लोगों और उनके श्रम के उत्पादों के साथ जैसा चाहे वैसा करें।" यहाँ दो चीजों को, जो न केवल भिन्न हैं, बल्कि बेमेल भी हैं एक ही नाम से पुकारा जाता है- स्वतंत्रता। यह बताता है कि दो अलग-अलग समूह इसे दो भिन्न और बेमेल नामों से पुकारते हैं- स्वतंत्रता और निरंकुशता।

"गडरिया भेड़ की गर्दन को भेड़िये से बचाता है। इसके लिए भेड़ अपने मुक्तिदाता के रूप में गडरिये के प्रति बतौर शुक्रगुजार होती है, जबकि भेड़िया इसी काम के लिए गड़रिये पर अपनी स्वतंत्रता को खत्म करने का आरोप लगाता है।... स्पष्ट है कि गडरिया और भेड़िया स्वतंत्रता शब्द की परिभाषा पर एकमत नहीं हैं।"

यह भी उतना ही स्पष्ट है कि समाजवादी और पूँजीवादी मुक्ति और स्वतंत्रता शब्दों की परिभाषा पर एकमत नहीं हैं। समाजवादियों के लिए स्वतंत्रता का अर्थ है कि राष्ट्र के उत्पादन के साधनों पर सभी लोगों का मालिकाना हो और वे एक केन्द्रीकृत योजना के अनुसार उनका प्रबंधन करें, जबकि पूँजीपतियों के लिए इसका अर्थ एकदम विपरीत है। कौन, सही है? समाजवादी नजरिये की सकारात्मकता यह है कि कम से कम यह सुसंगत तो है। अगर हम राजनीतिक लोकतंत्र (जनवाद) के पक्ष में हैं, जैसा कि हम निश्चित तौर पर प्रचार भी करते हैं, तो फिर इसी कारण से हमें आर्थिक लोकतंत्र के पक्ष में भी होना चाहिए।

पूँजीपति राजनीतिक लोकतंत्र के खिलाफ ज्यादा कुछ कहने की हिम्मत नहीं करते, लेकिन आर्थिक लोकतंत्र के खिलाफ वे इस आधार पर तर्क करते हैं कि यह स्वतंत्रता

के विरुद्ध एक प्रहार है। हम फिर से यही सवाल पूछते हैं कि किसकी स्वतंत्रता? क्या वे सभी लोगों के लिए जीवन की खुशियों में हिस्सेदारी कि स्वतंत्रता की चिन्ता करते हैं या उत्पादन के साधनों पर निजी सम्पत्ति के विशेषाधिकार की स्थिति को बनाये रखने की स्वतंत्रता की चिन्ता करते हैं?

स्वतंत्रता का अर्थ है भरपूर जिन्दगी जीना, यानी पर्याप्त भोजन, कपड़ा, मकान और साथ ही सोचने-विचारने के प्रभावशाली मौकों, व्यक्तित्व विकास व निजता की रक्षा से सम्बन्धित अपने शरीर की जरूरतों को पूरा करने की आर्थिक क्षमता। निश्चित ही इन अर्थों में सभी के लिए स्वतंत्रता तभी सम्भव है जब प्रचुरता की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त कर लिया जाता है।

मनुष्य की उत्पादकता का स्तर निम्न होना, समाज के वर्गों में विभाजन, मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण और केवल एक छोटे से समूह द्वारा स्वतंत्रता का आनन्द उठाने को ऐतिहासिक तौर पर उचित ठहराने का तर्क था। जबकि आज उत्पादकता उतनी कम नहीं है।

मानव इतिहास में पहली बार वर्गों का उन्मूलन करना, दुनिया को शोषण से मुक्त करना, बेरोजगारी को खत्म कर सम्पूर्ण सामाजिक सुरक्षा की सुविधा उपलब्ध कराना, संस्कृति की दुनिया में सुलभ प्रवेश और जिन्दगी में फुरसत, अध्ययन व सृजनात्मक गतिविधियों के लिए समय उपलब्ध करा कर मनुष्य जीवन के गुणों को बढ़ाना सम्भव हुआ है।

यह आसानी से नहीं होगा, यह तेजी से नहीं होगा, लेकिन समाजवाद आने के साथ यह सब कुछ हो सकता है।

हम मनुष्य के युगों पुराने सपने- मानवता की मुक्ति और केवल मुट्ठी भर लोगों के लिए नहीं, बल्कि सभी के लिए स्वतंत्रता को पूरा करने की दहलीज पर खड़े हैं।

18. सत्ता की राह

मार्क्सवादियों का मानना है कि समाज के रूपान्तरण के लिए क्रान्ति जरूरी है। उनका विचार है कि पूँजीवाद से समाजवाद में संक्रमण किसी भी समय नहीं, बल्कि तभी प्राप्त किया जा सकता है जब परिस्थितियाँ रूपान्तरण के लिए परिपक्व हों। वे थोड़े से लोगों द्वारा सत्ता कब्जाने के समर्थक नहीं हैं। क्रान्ति की कार्रवाई केवल तभी सफल हो सकती है जब सापेक्षिक सामाजिक अराजकता होती है, शासक वर्ग का नेतृत्व निष्प्रभावी हो जाता है और बहुसंख्य जनता मजदूर वर्ग के वर्ग सचेत मजबूत संगठनों द्वारा सत्ता कब्जाने का समर्थन करती है।

विद्रोह या बगावत के फलस्वरूप सरकार के कर्मचारियों को शासक वर्ग के एक सदस्य से दूसरे सदस्य में बदलना भर ही क्रान्ति नहीं है। मार्क्सवादियों के लिए "क्रान्ति"

शब्द का अर्थ कहीं ज्यादा गम्भीर है। यह एक वर्ग से दूसरे वर्ग के हाथ में आर्थिक व राजनीतिक सत्ता का हस्तान्तरण है। जिस प्रकार की क्रान्ति की वकालत मार्क्स किया करते थे, उस समाजवादी क्रान्ति का अर्थ विशेष रूप से पूँजीपति वर्ग से मजदूर वर्ग को सत्ता का हस्तान्तरण है। इसका अर्थ पूँजीपति और मजदूर वर्ग के बीच सम्बन्ध को बदलना है, जिससे कि मजदूर वर्ग शासक वर्ग बन जाता है। इसका अर्थ उत्पादन के साधनों का सामाजिकीकरण कर पूँजीवाद को ध्वस्त करना है।

मजदूर वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करना क्रान्ति का पहला चरण है। इसका दूसरा चरण है सामाजिक क्रम को नये रूप में ढालना और पूँजीपति वर्ग द्वारा किये जाने वाले बदलाव के प्रतिरोध को कुचलना।

ऐतिहासिक अनुभवों के आधार पर मार्क्सवादी चेतावनी देते हैं कि क्रान्ति बल प्रयोग और हिंसा के प्रयोग के साथ ही सम्पन्न होती है, इसलिए सामान्यतः यही कल्पना की जाती है कि वे "बल प्रयोग और हिंसा में यकीन रखते हैं।" ये सच नहीं है।

मार्क्सवादी हिंसा की वकालत नहीं करते। कोई भी स्थिरचित्त आदमी ऐसा नहीं सोचता। मार्क्सवादी इससे ज्यादा और क्या चाहेंगे कि वे पूँजीवाद से समाजवाद में समाज के रूपान्तरण के अपने उद्देश्य को शांतिपूर्ण और लोकतांत्रिक तरीकों से हासिल कर लें। हालाँकि वे चेतावनी देते हैं कि आवश्यक बदलाव करने की बहुसंख्य जनता की इच्छाओं को पूरा करने के प्रयास में मजदूर वर्ग को शासक वर्ग के प्रतिरोध का सामना करना पड़ेगा जो पुरानी सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए अन्त तक संघर्ष करेगा। इससे भी आगे वे जोर देते हैं कि मजदूर वर्ग जब सत्ता में आ जाये तो बल प्रयोग और हिंसा का उपयोग न्यायसंगत है। सत्ता से बेदखल पूँजीपति और दूसरे देशों के उसके सहयोगियों द्वारा उनकी सत्ता को उखाड़ फेंकने वाली प्रतिक्रान्ति में बल प्रयोग और हिंसा उसके प्रतिरोध का साधन होता है।

मार्क्सवादी पूँजीवाद से समाजवाद में संक्रमण को "निरंकुशता से स्वाधीनता" में परिवर्तन के रूप में देखते हैं। वे इसे आवश्यक और अपरिहार्य मानते हैं। वे खतरों से भली-भाँति परिचित होते हैं। वे उम्मीद करते हैं कि खून बह सकता है, जानें जा सकती हैं। लेकिन वे पूछते हैं कि इसका विकल्प क्या है? क्या समाजवादी क्रान्ति के साथ हो सकने वाली जनहानि का बिना पीड़ा झेले, बिना खून बहाये, बिना हिंसा और बिना किसी जनहानि के कोई विकल्प है? पूँजीवादी युद्ध में ये विकल्प इससे भी ज्यादा पीड़ादायी, ज्यादा रक्तरंजित, ज्यादा हिंसक और ज्यादा जानलेवा होते हैं। इतिहास की किताबें उन हजारों लोगों के बारे में भय के साथ बताती हैं जो फ्रांसीसी क्रान्ति के दौरान मारे गये, यकीनन यह एक त्रासद कहानी है। लेकिन, लगभग 1,70,000 कुल मृतकों की तुलना पिछले बड़े युद्ध में हुई मौतों की संख्या से करें। क्रान्तिकारी हिंसा जिसमें 1,70,000 लोगों की मौत हुई, उसकी तुलना युद्ध की हिंसा से करें, द्वितीय विश्व युद्ध में क्रमशः 2,20,60000 सैनिक और नागरिक मारे गये थे और 3,44,0000 घायल हुए थे।

विश्वव्यापी समाजवाद की स्थापना और इसके परिणामस्वरूप शान्ति स्थापना का विकल्प यही हो सकता है कि पूँजीवाद को बनाये रखा जाय और उसके अनिवार्य परिणाम के रूप से युद्ध की तबाही झेली जाय।

एक नयी जीवन शैली के निर्माण का विकल्प यही है कि पूँजीवाद की अगली विनाशलीला में सम्पूर्ण मानवजाति का सम्भावित विनाश हो।

एक शताब्दी पहले *कम्युनिस्ट घोषणापत्र* में कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंगेल्स ने दुनिया के मजदूरों को समझाया था कि क्यों उन्हें पूँजीवाद से समाजवाद में, मानवजाति के ऐतिहासिक विकास के अगले चरण में संक्रमण करना जरूरी है और इसे वे कैसे कर सकते हैं। क्रान्ति के इन वैज्ञानिकों का यह स्मरणीय कार्य प्रकाशित होने से कुछ हफ्ते पहले 12 जनवरी 1848 को एक महान अमरीकी, प्रतिनिधि सभा (हॉउस ऑफ रिप्रजेंटेटिव) में खड़ा हुआ और उसने उस विषय पर कुछ कहा जो उनके दिलो-दिमाग में था। अब्राहम लिंकन ने जनता के अधिकारों में क्रान्तिकारी बदलाव करने के बारे में कहा- "हर कहीं कोई भी व्यक्ति जिसका किसी विचार के प्रति झुकाव हो और जिसके पास ताकत हो, तो उसे हक है कि वह उठ खड़ा हो तथा मौजूदा सरकार को उखाड़ फेंके और एक नयी सरकार कायम करे जो उसके लिए बेहतर हो। यह सबसे अनमोल, सबसे पवित्र अधिकार है, ऐसा अधिकार जिस पर हम विश्व मुक्ति की आशा और उम्मीद लगाते हैं। ... ऐसे लोगों की बहुसंख्या का क्रान्तिकारीकरण हो सकता है जो उन थोड़े से लोगों को धराशायी कर देंगे, जो उनके साथ घुले-मिले या उनके करीब होंगे और जो इस आन्दोलन का विरोध कर रहे होंगे। हमारी अपनी क्रान्ति के दौरान टोरी ऐसे ही मुट्ठी भर लोग थे। यह क्रान्तियों का गुण होता है कि वे पुरानी लाइन और पुराने नियमों पर नहीं चलती, बल्कि उनसे नाता तोड़ लेती हैं और अपने लिए नयी लाइन और नये नियम बनाती हैं।"

19. समाजवाद आपको कैसे प्रभावित करेगा

समाजवाद परिपूर्णता लेकर नहीं आयेगा। यह स्वर्ग का निर्माण नहीं करेगा। यह उन सभी समस्याओं का हल नहीं कर देगा जिनका सामना मानवजाति कर रही है।

यह केवल कृत्रिम रूप से निर्मित समाज की आदर्शवादी व्यवस्था है, जैसी व्यवस्था के बारे में काल्पनिक समाजवादी सोचते थे कि इससे पापी सन्त बन जायेंगे, स्वर्ग धरती पर उतर आयेगा और हर समस्या का समाधान हो जायेगा। मार्क्सवादी समाजवादियों को ऐसा कोई भ्रम नहीं होता। वे जानते हैं कि समाजवाद केवल उन्हीं समस्याओं को हल करेगा जो मानव विकास के इस विशिष्ट चरण में हल की जा सकती हैं। इससे ज्यादा वे और कोई दावा नहीं करते। लेकिन जितना वे महसूस करते हैं उसके परिणामस्वरूप हमारी जिन्दगी में व्यापक सुधार होगा।

उत्पादक शक्तियों में सामूहिक स्वामित्व का सचेतन योजनाबद्ध विकास समाजवादी

उन्मूलन करता है और तकनीकी विकास की गति को तेज करता है, समाजवादी विज्ञान मुनाफा कमाने को पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य मानने वाले पूँजीवादी विचार से प्रभावित हुए बिना, आगे की ओर आश्चर्यजनक लम्बे डग भरता है। उत्पादन में वृद्धि और उपलब्ध सामानों की मात्रा में वृद्धि से सभी का जीवन स्तर ऊपर उठता है।

जीवनशैली में सम्पूर्ण बदलाव उन लोगों में भी बदलाव लाता है जो इस जिन्दगी को जीते हैं। शुरुआत में समाजवादी समाज में मनुष्य जिन्दगी और काम के प्रति वही नजरिया ले कर आयेगा जो पूँजीवादी समाज में था। पूँजीवाद के प्रतिस्पर्धी माहौल से ओत-प्रोत, वह आसानी से खुद को समाजवाद की सहकारी भावना में नहीं ढाल पायेगा। स्वार्थ की पूँजीवादी विचारधारा में डूबा हुआ, वह जल्दी से अपने साथ के लोगों की सेवा के समाजवादी सिद्धान्त में परिवर्तित नहीं हो जायेगा। यहाँ तक कि बदलाव के प्रति यह तत्परता उन लोगों के लिए भी सच है जिन्हें पूँजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन से सब कुछ प्राप्त होगा और निश्चित ही विशेष तौर पर यह उस पुराने पूँजीवादी शासक वर्ग के लिए भी सच होगा जिसने उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने से सामूहिक मालिकाने में परिवर्तन के दौरान अपनी सम्पदा और शान्ति खो दी है।

लेकिन जैसे-जैसे उपयोग के लिए सुनियोजित उत्पादन की नयी समाजवादी व्यवस्था अपनी जड़ें जमाने लगती है, वैसे-वैसे लोगों के रवैये और विकास में भी परिवर्तन होने लगता है। उनके मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से पूँजीवाद का कलंक फीका पड़ने लगता है और वे समाजवाद की भावना के प्रति उन्मुख होने लगते हैं। नयी पीढ़ी जो नये समाज में पलती-बढ़ती है वह उसी तरह समाजवादी जीवन पद्धति की अभयस्त हो जाती है, जिस तरह पुरानी पीढ़ी पूँजीवादी जीवन पद्धति की आदी थी।

पूँजीवादी प्रचारक हमें यकीन दिलाना चाहेंगे कि समाजवाद का अर्थ स्वतंत्रता का अन्त है। लेकिन इसके बिलकुल विपरीत समाजवाद स्वतंत्रता की शुरुआत है। समाजवाद का अर्थ उन बुराइयों से स्वतंत्रता है जो मनुष्यों को कष्टप्रद रूप से पीड़ित करती हैं, यानी मजदूरी की गुलामी, गरीबी, सामाजिक गैर बराबरी, असुरक्षा नस्लीय भेदभाव और युद्ध से स्वतंत्रता।

समाजवाद एक अन्तरराष्ट्रीय आन्दोलन है। दुनिया के सभी देशों में इसका एक समान कार्यक्रम है-- बर्बर प्रतियोगी व्यवस्था की जगह सभी सहकारी सामूहिक सम्पत्ति को स्थापित करना। एक ऐसे इनसानी भाईचारे पर आधारित समाज की स्थापना करना जिसमें एक का कल्याण सभी के कल्याण के रूप में प्रकट होता है।

समाजवाद कोई असम्भव स्वप्न नहीं है। यह समाज विकास का अगला चरण है। अब समय इसका ही है।

☆☆☆☆☆

समाजवादी की जिम्मेदारी

समाजवादियों के लिए इतिहास विकृत तथ्यों और घटनाओं का कोई घालमेल नहीं है। यह अव्यवस्था नहीं है, यह विकास के नियमों के एक निश्चित क्रम के अनुरूप होता है। किसी सभ्यता की अर्थव्यवस्था, राजनीति, कानून, धर्म और शिक्षा आपस में गुँथी हुई होती है। प्रत्येक चीज दूसरों पर निर्भर होती है और दूसरी चीजों के कारण ही उसका वह रूप होता है। इन सभी शक्तियों में आर्थिक कारक सबसे महत्त्वपूर्ण बुनियादी कारक है। इन सबका मूलतत्व वे सम्बन्ध हैं जो उत्पाद न करने वाले लोगों के बीच होते हैं। मनुष्य के जीने का ढंग उनके आजीविका कमाने के ढंग से तय होता है। यह किसी भी समाज में उस समय मौजूद उत्पादन प्रणाली से तय होता है।

अमरीकी अर्थव्यवस्था, यानी पूँजीवाद, उत्पादन की एक ऐसी व्यवस्था है जिसका मूल उद्देश्य लोगों की जरूरतों को पूरा करना नहीं बल्कि मुनाफा कमाना है। कोई पूँजीपति क्या बनाता है, इससे उस पर कोई फर्क नहीं पड़ता जब तक कि वह उससे पैसा कमाता है।

पूँजीवादी व्यवस्था उत्पादन की प्रक्रिया में दो समूहों- मालिकों और मजदूरों के सामाजिक सम्बन्धों की यानी सहचर्य की माँग करती है। मालिकों की संख्या अपेक्षतया कम होती है और उत्पादन के साधनों जमीन, जंगल, खदान, फैक्ट्रियों, मशीन और रेल मार्गों पर उनका मालिकाना हक होता है। मजदूर जो संख्या में बहुत ज्यादा होते हैं, केवल अपनी कार्यक्षमता के मालिक होते हैं। इन्हीं दो समूहों के सहचर्य के परिणामस्वरूप पूँजीवादी उत्पादन होता है।

उत्पादन के साधन उनके मालिक पूँजीपति वर्ग के मुनाफे के लिए परिचालित होते हैं। जब मुनाफे के कोई आसार नजर नहीं आते तो उद्योग के चक्कों का घूमना रुक जाता है, मनुष्य बेकार हो जाते हैं, मशीनें बेकार हो जाती हैं और जब ऐसा घटित होता है तो न तो देशभक्ति और न ही समाज कल्याण की भावना पूँजीपतियों को उद्योग के चक्के दुबारा चलाने के लिए प्रेरित करेगी। केवल एक ही चीज है जो उन्हें ऐसा करने के लिए राजी करेगी, वह है मुनाफे के आसार।

एक वर्ग मालिक बनकर जीता है और दूसरा वर्ग काम करके जीता है।

पूँजीवादी समाज में उत्पादन के साधनों के मालिकों के हित और जो लोग उनके लिए काम करते है उनके हित आवश्यक रूप से टकराते हैं। पूँजीपति वर्ग के हित में

है कि वह अपने विशेषाधिकार और अपनी सत्ता को बनाये रखे और उसे विस्तारित करे। मजदूर वर्ग के हित में है कि वह अपनी अधोगति का प्रतिरोध करे तथा अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार करे।

पूँजीवादी समाज में इन दो वर्गों के बीच हमेशा ही संघर्ष चलता रहता है।

चूँकि पूँजीपति के विशेषाधिकार और ताकत को उसके पास मौजूद धन से मापा जाता है, इसलिए उसकी जिन्दगी का पहला लक्ष्य अपने इस ढेर को और बढ़ाते जाना होता जाता है। वास्तव में उसके पास कोई विकल्प नहीं होता। हर कीमत में व्यापार में बने रहने, दूसरों से होने वाली प्रतियोगिता का सामना करने और जो उसके पास है उसे सुरक्षित रखने के लिए पूँजीपति को निरन्तर ही अपनी पूँजी को बढ़ाते रहना पड़ता है। व्यवस्था पूँजीपति को और मुनाफा कमाने के लिए मजबूर करती है, ताकि वह और ज्यादा पूँजी संचय कर सके और अधिक मुनाफा कमा सके, यह एक कभी न खत्म होने वाली प्रक्रिया है।

लेकिन इस आर्थिक बँटवारे का दूसरा आधा हिस्सा भी है, पूँजीपति को मजदूरी भी हर सम्भव कम से कम करनी पड़ती है ताकि वह संचय को हमेशा बढ़ाते रहने की आवश्यक नीति को जारी रख सके। हालाँकि यह कम मजदूरी ऊँचा मुनाफा कमाने की सम्भावना पैदा करती है लेकिन मजदूरों की उत्पाद को खरीदने की शक्ति में कमी लाती है। जिन चीजों का उत्पादन होता है लोगों को उनकी जरूरत होती है लेकिन वे इसकी कीमत नहीं चुका सकते।

उद्योगों का विस्तार जितनी तेजी से होता है क्रय शक्ति का विस्तार उससे पीछे छूट जाता है। यह एक असमाधेय अन्तरविरोध है जिसका अवश्यंभावी परिणाम होता है व्यवस्था का बिगड़ जाना जिसे हम मन्दी कहते हैं।

समाजवादी इस पर जोर देकर बताते हैं कि उतार या चढ़ाव महज एक संयोग नहीं है, यह कोई दुर्घटना नहीं है, देश के मूर्ख प्रशासकों चाहे डेमोक्रेट हों या रिपब्लिक, जो भी सत्ता में हों, यह उनके जरिये हुई कोई भूल-गलती भी नहीं। उतार या चढ़ाव इस व्यवस्था के ढाँचे (संरचना) में ही अन्तर्निहित है। पूँजीवादी व्यवस्था को इसी व्यवस्था में काम करना पड़ता है।

पूँजीवादी व्यवस्था की बुनियादी समस्या यह होती है कि वह अपने उस अतिरिक्त उत्पादन का जो बिक नहीं सकता और उस अतिरिक्त पूँजी का जिससे लाभकारी निवेश प्राप्त नहीं हो सकता, उसका क्या करें? साम्राज्यवाद और युद्ध या बड़े स्तर पर युद्ध सामग्री के उत्पादन के जरिये युद्ध की तैयारियों से इसका अस्थाई समाधान ही होता है।

पूँजीवादी प्रचारक हमें यकीन दिलाते हैं कि संयुक्त राज्य अमरीका भी इस प्रक्रिया से अछूता नहीं है। 1930 में भी वह इससे अछूता नहीं था जब काम करने योग्य एक चौथाई से भी ज्यादा मजदूर जो काम करने की इच्छा रखते थे और काम चाहते थे, वे भी नौकरियाँ नहीं पा सके।

पर क्या इस नयी सौदेबाजी से समस्या का समाधान नहीं होता था? क्या एनआरए,

एएए, डब्ल्यूपीए और पीडब्ल्यूए जैसी तमाम योजनाओं ने सभी को वापस काम पर नहीं रख लिया था? उसने ऐसा नहीं किया। रूजवेल्ट प्रशासन द्वारा राहत और पुनर्लाभ परियोजनाओं में अरबों डॉलर खर्च करने के बावजूद उनके पहले दो कार्यकालों के दौरान बेरोजगारों की फौज कभी भी 80 लाख से कम नहीं हुई।

द्वितीय विश्व युद्ध ही था जो हमें मन्दी से बाहर लाया। और जो चीज हमें दुबारा इससे भी बुरी एक और मन्दी में फँसने से बचा रही है, वह कोरिया युद्ध और तीसरे विश्व युद्ध के लिए युद्ध सामग्री में खर्चा करना है। इसके अलावा और कुछ भी नहीं है जो हमारी उत्पादक मशीनों को पूरी क्षमता में चलवा रहा हो और हमारी जनता को रोजगार दे रहा हो। यह इतना स्पष्ट है कि गैर-समाजवादी तक इसे स्वीकारते हैं। 3 मार्च 1951 को बौस्टन ग्लोब ने न्याय विभाग की ट्रस्ट विरोधी शाखा के भूतपूर्व प्रमुख थुरमन अर्नोल्ड को उद्धृत करते हुए लिखा कि "हमारी उत्पादन व्यवस्था वस्तुओं के वितरण की हमारी क्षमता से भी आगे पहुँच चुकी है। हम केवल युद्ध शुरू करके ही उत्पादन के साथ सन्तुलन कायम कर सकते हैं। जब कोई बाजार न बचा हो, तो चीजों के वितरण का यही एक तरीका होता है।"

मैंने पूँजीवाद के समाजवादी विश्लेषण की केवल रूपरेखा ही प्रस्तुत की है, निश्चित ही बात इससे कहीं गहरी है।

तथ्यतः यह व्यवस्था अपव्ययी है, यह व्यवस्था इसलिए अपव्ययी है क्योंकि इसका ध्यान मनुष्य की जरूरतों को पूरा करने के बजाय कीमतें और मुनाफाखोरी बढ़ाने में है। यह फसलों और सामानों के नाश को मंजूरी देती है।

यह इसलिए अपव्ययी है, क्योंकि यह उन लोगों को जो काम करना चाहते हैं, हमेशा उपयोगी काम उपलब्ध नहीं कराती। और ठीक उसी समय यह शारीरिक और मानसिक तौर पर समर्थ हजारों लोगों को बिना काम दिये जीने के लिए छोड़ देती है।

यह इसलिए अपव्ययी है, क्योंकि यह समय-समय पर अपने आदमियों, सामानों, मशीनों और पैसों को युद्ध में झोंक देती है, युद्ध जो जीवन की हर अच्छी चीज को और साथ ही खुद जीवन का भी निर्दयतापूर्वक विनाश कर देता है।

पूँजीवादी व्यवस्था अतार्किक है। यह अपनी प्रकृति से ही अतार्किक है क्योंकि यह सभी की जरूरतों के लिए उत्पादन पर टिके होने के बजाय कुछ लोगों के मुनाफे के लिए उत्पादन पर टिकी है।

यह इसलिए अतार्किक है, क्योंकि एक ओर तो व्यापक सतर्क योजना द्वारा राष्ट्र का आर्थिक कल्याण करना इसका उद्देश्य ही नहीं होता। इसके बजाय यह निजी पूँजीपतियों को यह तय करने की मंजूरी देती है कि उनके लिए सर्वोत्तम क्या है। यह उम्मीद करती है कि सभी निजी पूँजीपतियों के इन निर्णयों का कुल योग कैसे भी, किसी भी तरह समुदाय की भलाई में मदद करता है।

यह अतार्किक है, क्योंकि यह लोगों को परस्पर विरोधी वर्गों में विभाजित करती है। एक ऐसे एकीकृत समुदाय के बजाय जहाँ लोग भाईचारे और मित्रता के साथ रहें, पूँजीवादी

व्यवस्था उनके बीच काम करने वाले वर्ग और मालिक वर्ग के बीच फूट पैदा करती है, जो राष्ट्रीय आय के बड़े हिस्से को पाने के लिए निश्चित रूप से आपस में लड़ते हैं।

जिन मूल्यों में लोग जीते हैं उनमें भ्रम पैदा करने के चलते यह अतार्किक है। एफ. पी. ए. की कविता में इसे बेहतर ढंग से व्यक्त किया गया है।

बाकी 364 दिनों के लिए

क्रिसमस बीत गया। व्यक्त करो अपनी महत्त्वाकांक्षा!
फिर शुरू करो झगड़े! आगे बढ़ो, प्रतिस्पर्धा करो!
सारी भावुकताओं का नाश हो, धर्मभीरुता काबिज हो!
वाणिज्य को कुछ भी हासिल नहीं होगा विनोदप्रियता से,
पैसा ही सबकुछ है वही जो तुम्हारे सारे श्रम का मोल है
प्रतिस्पर्धियों से धक्का-मुक्की करो, पड़ोसी को कुछ न समझो!
क्रोधपूर्ण हड़बड़ी में धक्का मारकर उन्हें किनारे करो,
बहस और भागदौड़ और मोलतोल और चिन्ता करो!
खुद को बीमारी और बेचैनी के उन्माद में डुबो दो-
क्रिसमस बीत गया और व्यापार तो बहरहाल व्यापार है ।

पूँजीवादी व्यवस्था अन्यायी है। गैर-बराबरी इसकी नींव का पत्थर है। इसके साथ ही जिन्दगी की तमाम अच्छी चीजों का कभी न खत्म होने वाला सोता एक छोटे से विशेषाधिकार प्राप्त अमीर वर्ग की ओर बहता है, जबकि एक बहुत बड़े विशेषाधिकार विहीन गरीब वर्ग के लिए भयानक असुरक्षा, अपमानजनक दरिद्रता और अवसरों की असमानता है। धरती पर सबसे मजबूत, सबसे अमीर पूँजीवादी देश अमरीका का यही हाल है। मैं आय के वितरण पर प्रकाशित 1949 की काँग्रेस की एक रिपोर्ट से केवल एक आँकड़ा पेश कर रहा हूँ-- 25 प्रतिशत अमरीकी परिवारों की कुल वार्षिक आय 2000 डॉलर थी, यानी एक हफ्ते में 40 डॉलर से भी कम, और ठीक इसी समय सरकारी अर्थशास्त्री बताते हैं कि न्यूनतम जीवन स्तर के लिए सालाना 3000 डॉलर कि आवश्यकता थी और देश के लगभग आधे परिवार इसे हासिल नहीं कर पा रहे थे।

यह बेतरतीब तामझाम-- जिसमें अपव्ययता और अन्याय, असुरक्षा और माँग, बेरोजगारी और युद्ध, इस आर्थिक व्यवस्था की संरचना में ही अन्तर्निहित है, इसे राज्य की दमनकारी एजेन्सी के जरिये सुरक्षित रखा जाता है। मार्क्स के शब्दों में "राज्य शासक वर्ग की कार्यकारी समिति है।" वुडरो विल्सन के शब्दों में " अमरीकी सरकार के प्रमुख ही संयुक्त रूप से अमरीकी पूँजीपति और उद्योगपति हैं।"

आर्थिक व्यवस्थाएँ पैदा होती हैं, परिपक्वता तक विकसित होती हैं, उनका क्षरण होता है और फिर दूसरी आर्थिक व्यवस्थाएँ उनका स्थान ले लेती हैं। ऐसा ही सामंतवाद के साथ हुआ था, ऐसा ही पूँजीवाद के साथ होगा।

लेकिन नयी व्यवस्था आदेश दे देने से ही नहीं बन सकती। यह पूरे समाज द्वारा

तैयार परिस्थितियों से ही पैदा होती है। समाजवादियों का विचार है कि खुद पूँजीवादी समाज के विकास में ही उस नयी समाज व्यवस्था के बीज मौजूद हैं जो उसका स्थान लेगी।

वह इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि पूँजीवाद ने उत्पादन को व्यक्तिगत प्रक्रिया से सामूहिक प्रक्रिया में परिवर्तित कर दिया है। अमरीकी काँग्रेस की अस्थाई राष्ट्रीय आर्थिक समिति ने अपनी वित्तीय रिपोर्ट में कहा था कि "आधुनिक आर्थिक समस्या को स्पष्ट रूप से समझना किसी के लिए भी तब तक सम्भव नहीं है, जब तक वह यह नहीं समझ लेता कि आधुनिक विश्व का वाणिज्यिक और औद्योगिक जीवन आदमियों की व्यक्तिगत क्षमताओं के जरिये नहीं, बल्कि आदमियों के समूह या सामूहिक क्षमताओं से चलता है।"

यह सच है। लेकिन इस सामूहिक गतिविधि का उत्पाद उनको नहीं मिलता जो इसे पैदा करते हैं। पूँजीवादी समाज में वस्तुएँ सहकारी रूप से संचालित होती हैं और सहकारी रूप से ही निर्मित होती हैं, लेकिन जो इन्हें बनाते हैं वे उन चीजों के सहकारी रूप से मालिक नहीं होते हैं।

यही पूँजीवादी समाज का मूलभूत अन्तरविरोध है- तथ्य यह है कि उत्पादन सामाजिक है, सामूहिक प्रयासों और सामूहिक श्रम का नतीजा है, जबकि उसका विनियोग निजी, व्यक्तिगत है। उत्पाद सामाजिक रूप से उत्पादित होते हैं, लेकिन उनका विनियोग उसके उत्पादकों द्वारा नहीं, बल्कि उत्पादन के साधनों के मालिक, पूँजीपतियों द्वारा होता है और ज्यादातर मामलों में वे मालिक उत्पादन में बहुत कम या कुछ भी योगदान नहीं करते। मालिकाना कभी कार्यकारी था, लेकिन आज परजीविता है। एक वर्ग के रूप में अब पूँजीपति की कोई जरूरत नहीं। अगर उन्हें चाँद पर भी भेज दिया जाता है तो उत्पादन को एक मिनट के लिए भी रोकने की जरूरत नहीं होगी।

इसका उपचार है योजना-- उत्पादन का सामाजिकीकरण और उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व। सामाजिक उत्पादन और निजी विनियोग के बीच के टकराव को हल करने का रास्ता पूँजीवादी प्रक्रिया के सामाजिक उत्पादन के विकास को उसके तर्क संगत निष्कर्ष, यानी समाजवादी स्वामित्व तक ले जाना है।

उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व के बजाय सामाजिक स्वामित्व, मुनाफे के लिए अराजक उत्पादन के बजाय उपयोग के लिए नियोजित उत्पादन, यही है समाजवाद का जवाब।

समाजवाद का अर्थ पूँजीवाद में टुकड़े-टुकड़े में सुधारों की पैबंदसाजी नहीं होता। इसका अर्थ होता है एक क्रान्तिकारी बदलाव, पूरी तरह से भिन्न कार्यदिशा के अनुरूप समाज का पुनर्निर्माण। जो सिद्धान्त व नियम समाजीकृत और नियोजित अर्थव्यवस्था को संचालित करते हैं, वे उनसे एक दम भिन्न होते हैं जो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को संचालित करते हैं।

अव्यवस्था तब पैदा होती है जब उत्पादन के साधनों का प्रत्येक पृथक मालिक जो मन में आये वही करता है, जबकि समाजवादी व्यवस्था उसकी जगह संगठित प्रयासों और

योजना के जरिये सुव्यवस्था स्थापित करती है।

आर्थिक निर्णय इस पर आधारित नहीं होते कि कितना मुनाफा कमाया जा सकता है बल्कि इससे तय होते हैं कि लोगों को क्या चाहिए। कपड़े बनते हैं पैसा कमाने के लिए नहीं, बल्कि लोगों को कपड़ा उपलब्ध कराने के लिए और इसी तरह अन्य सामानों का भी उत्पादन होता है।

प्रचुर उत्पादन करने की क्षमता का चरम उपयोग सभी को सभी चीजें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराने में होता है, न कि मुनाफा कमाने को ध्यान में रखते हुए प्रचुर उत्पादन को दबाने में।

सर पर मँडराती मन्दी और बेरोजगारी का भय इस समझ से समाप्त हो जाता है कि उपयोग के लिए नियोजित उत्पादन सभी के लिए रोजगार में वृद्धि करता है और पालने से लेकर कब्र तक आर्थिक सुरक्षा देता है।

साम्राज्यवादी युद्ध भी खत्म होने की कगार पर होते हैं जो मुनाफाखोरों की विदेशी बाजारों की तलाश का परिणाम हैं ताकि वे अपना "अतिरिक्त" सामान बेच सकें और "अतिरक्त" पूँजी का निवेश कर सकें-- युद्ध इसलिए खत्म हो जाते हैं क्योंकि अब अतिरिक्त सामान या पूँजी नहीं होती और न ही मुनाफाखोर होते हैं।

संक्षेप में, समाजवादी व्यवस्था की संरचना उन सभी मुख्य बुराइयों को खत्म करती है जिन्हें पूँजीवादी व्यवस्था का ढाँचा पैदा करता है।

यह एक समाजवादी की पूँजीवाद और समाजवाद के विश्लेषण की व्यापक रूपरेखा है। इसी पर वे यकीन भी करते हैं। और 1917 से सारी दुनिया कि घटनाएँ उनके विश्वास को सही ठहरा चुकी हैं। समाजवादी की नजर में उनका विश्लेषण सही साबित हुआ है। यह भविष्यवाणी कि दुनिया समाजवाद की ओर बढ़ेगी, सही साबित हुई है। समाजवाद 20 करोड़ लोगों के लिए पहले से ही जिन्दगी जीने का स्थापित तरीका बन गया है। यह तेजी से बाकी के 60 करोड़ लोगों के लिए जिन्दगी जीने का तरीका बन रहा है। ये दो समूह साथ मिलकर दुनिया की आबादी का लगभग एक तिहाई बनते हैं।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि समाजवाद का यह महान अग्रवर्ती अभियान हमारे देश के शासक वर्ग के लिए खतरे की घण्टी है। इसे बजने दो, इसके बावजूद कि अमरीका सबसे धनी और पूँजीवाद का सबसे मजबूत किला है, इसके बावजूद कि यह मजबूत है, इसकी प्रचार मशीन बहुत ज्यादा प्रभावी है और इसके बावजूद कि मौजूदा पल में मजदूर वर्ग यकीनन इस स्थिति में नहीं है कि विरोध कर सके। मजदूरों के नेता अपने देश में उसकी आर्थिक तानाशाही का हल्का प्रतिरोध ही करते हैं और वास्तव में विदेशों में उसकी विस्तारवादी तथा समाजवाद विरोधी नीतियों को प्रोत्साहित करते हैं। आज शासक वर्ग के आगे किसी भी दुष्परिणाम का विरोध करने वाला संगठित प्रतिपक्ष नहीं है।

मुझे सारे देश में फैले वाम विरोधी हिस्टीरिया पर विस्तार से चर्चा करने की जरूरत नहीं जो इस विरोधी राय को खामोश करने के लिए अपनाया गया। लोगों को सजा देने वाले प्रचलित स्मिथ एक्ट और मैक्केरन एक्ट जैसे नये कानून किसी अपराध के लिए नहीं हैं, जो लोगों ने

किये हों, बल्कि उस विचार के लिए हैं जिस पर लोग कायम होते है।

हम इस सवाल पर चर्चा कर रहे हैं कि अमरीका जैसे देश में जहाँ विरोधियों को कब्जे में करने का दमनकारी माहौल व्याप्त है, ऐसे में एक समाजवादी को क्या करना चाहिए।

मेरे पास इसका कोई रटा-रटाया जवाब नहीं है। मेरे पास ऐसा कोई आसान सूत्र नहीं है जो हर चीज को आसान बना देगा। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि यदि आप इस पर यकीन करें कि जो समस्या हमें घेरे हुए है उनका समाधान समाजवाद में है तो यह आपका काम है कि आप समाजवाद के बारे में जहाँ से भी और जैसे भी हो सके, सीख लें।

हम इस तर्क से भली-भाँति परिचित हैं कि "अमरीकी जनता समाजवाद के लिए तैयार नहीं है", मैं कहता हूँ कि "अगर उन्हें समाजवाद के बारे में नहीं बताया गया तो वह कैसे और कब इसके लिए तैयार हो पायेगी?" बिना समाजवादी चेतना के कोई समाजवादी आन्दोलन नहीं हो सकता। एक गम्भीर समाजवादी की पहली और सबसे जरूरी जिम्मेदारी है एक समाजवादी चेतना का निर्माण करना, स्पष्ट समाजवादी लक्ष्य और प्रभावशाली समाजवादी साधनों का निर्माण करना।

मैं यह भूला नहीं हूँ कि केवल विशाल मजदूर वर्ग की उन आन्दोलनात्मक कार्रवाइयों से ही यह सम्भव है, जो अपने शोषण और असुरक्षा के कारणों को समझते हैं और तभी पूँजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन प्रभावी हो सकता है, लेकिन यह तभी होता है जब मजदूर वर्ग समाजवादी ज्ञान से सुसज्जित होता है, यह ज्ञान उसे उन परिस्थितियों का सक्रिय सृजनात्मक संगठनकर्ता बना सकता है जो पूँजीवाद को खत्म कर सकता है।

इतिहास में ऐसे दौर भी आते हैं जब जनान्दोलनों को खड़ा करने में सारा जोर लगाना पड़ जाता है। हालाँकि यह सन्देहजनक है कि आज इस देश में लक्ष्य की सफलतापूर्वक प्राप्ति सम्भव है। मजदूर वर्ग के पास समाजवादी चेतना नहीं है; इनके नेता उग्र परिवर्तनवादियों की तलाश के दौर में वैचारिक विभ्रम से ग्रस्त हैं। अभी हम जिस सर्वोत्म की उम्मीद कर सकते हैं वह यही है कि समाजवादी प्रचार और शिक्षा आन्दोलन को तब तक जारी रखा जाय जब तक मजदूर वर्ग का आन्दोलन अपने समाजवादी लक्ष्य तक लम्बे डग भरता हुआ अग्रवती अभियान के लिए तैयार न हो जाये।

अभी समाजवादियों के लिए सबसे बड़ा काम यही होगा कि वे अपने विश्वास को जिन्दा रख सकें। हमारा सर्वोपरि कर्तव्य शुरूआती दौर के ईसाइयों की तरह अपने विचारों का प्रचार करना है।

वक्त बहुत कठिन है, इसलिए हमें अपने काम को पहले की अपेक्षा ज्यादा कुशलता से और ज्यादा प्रभावी ढंग से करना सीखना चाहिए। हमें एच. जी. वेल्स द्वारा जूते की यह दुर्दशा में सुझायी गयी बातों का अनुसरण करना चाहिए- "हमें समाजवाद के बारे में सोचना चाहिए, पढ़ना चाहिए, विचार करना चाहिए। तभी हम इसके बारे में निश्चित, स्पष्ट और कायल हो सकते हैं।" हमें यह जरूर करना चाहिए। चाहे हमारे रास्ते कुछ भी हों, जितना हम सोचते हैं, जमीन उससे ज्यादा तैयार है। हमें वह बीज बोना चाहिए जिससे समाजवादी चेतना पैदा हो सके।

निश्चित ही हमारे लिए रोज-ब-रोज के संघर्षों में हिस्सेदारी करना जरूरी होगा, जैसे कि मैक्केरन एक्ट के विरोध में, कोरिया से सैनिक वापस बुलाने और शान्ति के लिए। लेकिन इस बारे में हमें कोई गलती नहीं करनी होगी। हम केवल लोगों को उनके रोज-ब-रोज के हितों के संघर्ष में लगाकर उन्हें समाजवाद के लिए आकर्षित नहीं कर सकते। यह सच *नहीं* है, जैसा अमूमन समझा जाता है कि धरना प्रदर्शन करने, किरायेदारों का संगठन बनाने और प्रगतिशील पार्टी प्रत्याशी के लिए चुनाव प्रचार में भाग लेने वाले लोग अपने आप ही समाजवादी बन जायेंगे। सच से इससे ज्यादा दूर और कुछ नहीं हो सकता। रोज-ब-रोज के संघर्ष जनता तक पहुँचने का सबसे अच्छा उपलब्ध साधन हैं, लेकिन वे *समाजवादी* तभी बनते हैं जब सहज और स्पष्ट रूप में उन्हें समाजवाद के उद्देश्यों से परिचित कराया जाता है।

तात्कालिक संघर्ष, लक्ष्य तक पहुँचने का एक वाहन हैं। लेकिन केवल तभी, जब उसे सही दिशा में चलाया जाय। अगर ऐसा नहीं किया गया तो यह एक ऐसा वाहन है जो अपने लक्ष्य तक कभी नहीं पहुँचता और सुधारवाद की दलदल में धँस जाता है।

शान्ति के लिए प्रेरित करना महत्त्वपूर्ण है। लेकिन समाजवादियों को इससे एक कदम आगे बढ़ना जरूरी है। उन्हें न केवल यह समझाना चाहिए कि कोरिया से हमारी सेना वापस बुलायी जाय, बल्कि यह भी समझाना चाहिए कि पूँजीवादी व्यवस्था की प्रकृति के चलते उन्हें वहाँ पहले भेजा ही क्यों गया था। उन्हें यह भी दिखाना जरूरी है कि केवल समाजवाद के जरिये कैसे सुरक्षित और स्थायी शान्ति प्राप्त की जा सकती है।

संक्षेप में, हमारा काम तात्कालिक उद्देश्य को दीर्घकालिक उद्देश्य के साथ सही ढंग से जोड़ना है। रोज-ब-रोज के संघर्ष अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन समाजवादी के लिए इसका दोहरा महत्त्व है। ये जनता को शिक्षित करने का जरिया हैं और एक ऐसा साधन हैं जिससे समाजवादी समझदारी हासिल की जा सकती है और समाजवादी चेतना पैदा की जा सकती है।

हम इतिहास के एक निष्ठुर दौर में हैं। लेकिन एक समाजवादी को हताश नहीं होना चाहिए, हताशा शासक वर्ग का विशेषाधिकार है। यह उसकी दुनिया है जो बिखर रही है, हमारी नहीं।

समाजवादी सामाजिक तार्किकता के साझेदार हैं। हमारे पास एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। हमें अपने सारे प्रयासों को उन्मादी, विध्वंसक पूँजीवादी व्यवस्था से छुटकारा पाने और उसकी जगह पर एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करने की ओर मोड़ देना होगा जो तार्किक बुद्धि से काम करने की इजाजत देती है- यही हमारा काम है।
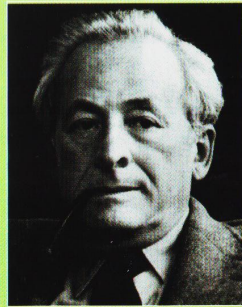
☆☆☆☆☆

"सच्चाई हमारे पक्ष में है। समाजवादी प्रचारकों का काम उस सच्चाई को सुस्पष्ट और अत्यन्त स्वीकार्य रूप में प्रस्तुत करना है।... भारी भरकम शब्दावली और गाली–गलौज न तो किसी विषय को स्पष्ट करते हैं और न ही उसे स्वीकार्य बनाते हैं। वामपंथी जुमलेबाजी जैसे "फासीवादी नरपशु" या "साम्राज्यवाद का पालतू कुक्र्रा" काम के बोझ से लदे वामपंथी लेखकों के लिए आसान तरीका हो सकता है, लेकिन इसका उन लोगों के लिए कोई अर्थ नहीं जो पहले से ही मनोहर वामपंथी दायरे में शामिल न हुए हों।... जब तथ्य इतना चीख–चीख कर और इतने स्वीकार्य रूप से हमारी बात कह रहे हों तो भला बढ़ाचढ़ा कर या तोड़–मरोड़ कर बात कहने की जरूरत ही क्या है?"

–लियो ह्यूबरमन

(वामपंथी प्रचार के बारे में, मंथली रिव्यू, सितम्बर 1950)

गार्गी प्रकाशन की वेबसाइट के लिए स्कैन करें।

ISBN 81-87772-29-8

मूल्य: 70 रुपये